कपालकुण्डला

(तान्त्रिक उपन्यास)

Kapal - Kundalla
(Tantrik - upanayas)
(Novel)

मूल लेखक

स्वर्गीय श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

Late. Shree. Bankimachandra
Chattopadhy

2/- Pages 126

अनुवादक

Translator

स्वर्गीय पं० रूपनारायण पाण्डेय

Late Pt. Roop Narayan Pandey

प्रकाशक

श्री प्रभाकर साहित्यालोक

रानीकटरा लखनऊ

चतुर्थ संस्करण

मूल्य दो रुपया

भूमिका

जननी जन्मभूमि के प्रति प्रेम को उद्‌बुद्ध करनेवाले लोकप्रिय राष्ट्रीयगान 'वंदेमातरम्' के रचयिता तथा विदेशी पठानों से आक्रांत और अर्थलोलुप स्वेच्छाचारी अंग्रेजों की ताजी गुलामी से विकल, व उस समय के हिन्दू-समाज में उत्पन्न धर्मान्धता के फलस्वरूप रूढ़िगत अनाचारों और कलुषित संस्कारों से पीड़ित, असहाय जनता में स्वावलंबन, स्वाभिमान, राष्ट्रीयता तथा भारतीय मौलिक संस्कारों में आस्था के उद्‌बोधक, महा-महिमा-मण्डित बंकिम, आज की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक सभी क्रांतियों के आदिस्रोत थे।

सन् ८४२ ई० मे बंगनरेश आदिशूर द्वारा, यज्ञ के लिए कान्यकुब्ज देश से आमंत्रित और फिर बंगाल में ही बस गये श्री 'दक्ष' चट्टोपाध्याय से १८ वीं पीढ़ी में अवस्थी गंगानन्द, 'चटर्जी वंश' के 'फूलिया' नाम के एक अति कुलीन घराने के पूर्वपुरुष थे। इन्हीं से ८ वीं पीढ़ी में, जिला 'चौबीस परगना' (बंगाल) के काटालपाड़ा ग्राम में भारत के सुवर्णकलश बंकिम ने सन १८३८ ई० में जन्म लेकर ५६ वर्ष की आयु में, सन् १८९४ ई० में, गोलोक-यात्रा की।

अंग्रेजी हुकूमत के उच्चपदाधिकारी, रायबहादुर बंकिमचंद्र चटर्जी, सी० आई० ई०, शासन के स्वेच्छाचार से सदैव लोहा लेने पर भी हुकूमत के अनन्य आदर के पात्र रहे। उस समय नेटिवों (काले भारतीय) की बिसात ही क्या थी! फिर भी अंग्रेज इन नरशार्दूल के विरोधाभास से ही विचलित हो उठते थे। सरकार और जनता दोनों के ही अनीतिकारी वर्ग के लिए वे नृसिंह स्वरूप थे। अंग्रेजी दबदबे से आतंकित और पाश्चात्य चकाचौंध में मुग्ध बंगाल के निर्जीवप्राय उस बाबू-युग में भी उनके साथ किसी अंग्रेज का मुकदमा पड़ जाने पर उन गौरांग प्रभु को कलकत्ता-बार में एक भी वकील न मिलने से नतोन्मुख होना पड़ा था।

ईश्वरचद्र विद्यासागर, रमेशचन्द्र दत्त, मधुसूदन दत्त, केशवचंद्र सेन-जैसे उनके समकालीन महापुरुषों में, मेधावी, विचक्षण और आत्माभिमानी वंकिम का बड़ा आदर था। विश्वविख्यात टैगोर ने अपनी किशोरावस्था में इस प्रतिभाशाली रोबीले व्यक्ति के दर्शन से मुग्ध होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा जब-तब की है। उनका दार्शनिक ज्ञान और विश्लेषण-शक्ति उनके 'कृष्ण-चरित्र', धर्मतत्त्व तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर टीका एवं विवेचन से प्रगट है। राष्ट्रीय संघर्ष, जमींदारी-उन्मूलन, विदेशयात्रा, पर्दा, स्त्रीशिक्षा, बहुविवाह, स्त्रियों तथा निम्नजातीय वर्ग की हेय दशा-जैसे, भ्राति से उत्पन्न राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा धार्मिक अनेक वैषम्यों में साम्य उत्पन्न करने की अभिरुचि और यत्किञ्चित्-प्राप्त सफलता या उथल-पुथल देश में इधर जो हुई है, उसको सौ वर्ष पूर्व ही भारतीय दृष्टिकोण से अंकुरित करने के फल-स्वरूप ही वे मंत्रदृष्टा अथवा ऋषि करके पूज्य हैं। 'अंग्रेजी ही नहीं, देशीय भाषाओं में भी श्रेष्ठसाहित्य लिखा जा सकता है,' इस नूतन आत्मविश्वास के देनहार और भारतीय साहित्यिकों, निर्भीक समालोचकों तथा सुधारकों के शिरोभूषण हैं।

इनके उपन्यास, निबंध, प्रहसन एवं व्यंग्य तथा इनके पत्र 'बंग-दर्शन' में प्रकाशित धार्मिक विवेचनों से न केवल साहित्यसुलभ मनोरंजन ही प्राप्त है, वरन् घर और बाहर, हमारे सामने नित्य प्रस्तुत उलझनों व धर्म-संकटों में, चिरंतन के लिए पथ-प्रदर्शक यह एक अविनाशी साहित्य है। विस्तृत विवरण 'श्री प्रभाकर साहित्यालोक' से शीघ्र प्रकाशित होनेवाली बंकिम बाबू की वृहत् जीवनी में मिलेगा।

हमारे संस्थान से बंकिम-साहित्य का अधिकांश प्रामाणिक अनुवाद प्रकाशित हो चुका है—शेष हो रहा है। सौभाग्यवश उसके अनुवाद और संपादन में देश-प्रख्यात, बंगला के अनुवादकों में अद्वितीय, वयोवृद्ध साहित्यकार पं० रूपनारायण पाण्डेय का सहयोग प्राप्त होने का हमें गौरव रहा है।

अचानक श्री पाण्डेयजी के स्वर्गवास हो जाने पर हमारे लिये यह एक समस्या बन गई कि ऋषि बंकिम के अवशेष कृष्णचरित्र आदि दार्शनिक ग्रंथों का सफल अनुवाद किस प्रकार हो। सौभाग्यवश श्री पाण्डेयजी के ही सहयोगी लेखन-प्रकाशन-मुद्रण के समग्ररूपेण कलाकार तथा विद्वत्प्रवर श्री चंद्रिकाप्रसादजी जिज्ञासु ने यह भार सहर्ष ग्रहण कर हमें चिन्तामुक्त कर दिया। बंकिम-साहित्य का हमारा प्रकाशन अब पुनः पूर्ववत् जारी है।

प्रस्तुत पुस्तक 'कपालकुण्डला' बंकिम बाबू की एक अद्वितीय कृति है। यह एक तांत्रिक उपन्यास है। बंकिम बाबू के उपन्यासों में आनन्दमठ श्रेष्ठ है अथवा कपालकुण्डला, इसका निर्णय करने में साहित्य-प्रेमी आज तक झूल रहे हैं। बंगला में सर्वप्रथम १८६७ ई० में उदय होने के उपरांत बंकिम बाबू के जीवनकाल में ही इसके ७ बृहत् संस्करण निकल चुके थे। सन् १८८५ में एच० ए० डी० फिलिप्स ने अंग्रेजी भाषा में और एक वर्ष बाद ही प्रोफेसर क्लेम ने इसके अनुवाद से जर्मन भाषा को गौरवान्वित किया। Literary History of India में आर० डब्लू० फ्रेजर ने लिखा है कि पाश्चात्य उपन्यास-साहित्य में 'Mariage De Loti' के सिवा कोई भी पुस्तक कपालकुण्डला का मुकाबला नहीं कर सकती।

कपालकुण्डला के कथानक में कापालिक व उसकी वाममार्गी तांत्रिक विद्या के सजीव चित्रण ने काली-पूजा के अनन्य उपासक बंगालियों के गृहपुस्तकालयों में इस पुस्तक को अनिवार्य स्थान प्रदान करा दिया है। कपालकुण्डला, मोती बीबी और नवकुमार के मानवतल का चित्रण रहस्यमय, विचित्र और बंकिम बाबू की अपनी अद्वितीय कला है। कपालकुण्डला तो मानो भगवती कपाल मालिनी का धरती पर सरल और सौम्य अवतार है। कापालिक का आद्योपांत विवरण अत्यंत रोमांचकारी है।

नन्दकुमार अवस्थी

अध्यक्ष, श्री प्रभाकर साहित्यालोक, लखनऊ

कपालकुण्डला

प्रथम खण्ड

पहला परिच्छेद

सागर-सङ्गम में

"Floating straight obedient to the stream."
--Comedy of errors.

ढाई सौ वर्ष पहले, एक दिन, माघ मास के भोर पहर, यात्रियों की एक नाव गङ्गासागर से लौट रही थी। पुर्तगाली और दूसरे नाविक दस्युओं के भय से उन दिनों यात्रियों की नावें एकमाथ गरोह बाँधकर आती-जाती थीं, उस समय यही प्रथा बन गयी थी। किन्तु यह नाव एकाकी चली जा रही थी। कारण यह है कि रात्रि के अन्त में घना कुहरा दिग्-दिगन्त तक फैल गया था, नाविकों को दिशा-ज्ञान नहीं हो रहा था, और वे वेड़े से कितनी ही दूर भटक गये थे। अब वे किस तरफ कहाँ जा रहे हैं, इसका सही पता नहीं था। बहुतेरे यात्री पड़े सो रहे थे। एक वृद्ध और एक नवयुवक, केवल दो व्यक्ति जाग रहे थे। वृद्ध युवक के साथ कुछ वार्तालाप कर रहे थे। एक बार बातचीत बन्द कर वृद्ध ने नाविकों से पूछा—"माझी, आज कितनी दूर जा सकोगे ?" माझी जरा हिचकिचाया, बोला—"मैं कुछ कह नहीं सकता।"

वृद्ध कुछ कुपित होकर माझी को डाटने लगे। नवयुवक ने कहा—

महाराज, जो काम जगदीश्वर के हाथ में है, उसको बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं बता सकते—यह मूढ़ किस तरह बतावेगा ? आप घबड़ाइये मत।

वृद्ध ने और उग्र होकर कहा—घबड़ाऊँ नहीं, कहते क्या हो ? बदमाश लोग बीस-पचीस बीघे धान काट ले गये, बाल-बच्चे साल भर खायँगे क्या ?

घर का यह समाचार उन्होंने गंगासागर में आ जाने के बाद पीछे आनेवाले दूसरे यात्रियों के मुँह से सुना था। युवक ने कहा—मैंने तो पहले ही कहा था, आपके घर में और कोई देख-रेख करनेवाला नहीं है—आपका आना ठीक नहीं हुआ।

बूढ़े ने पूर्ववत् कुछ और तेज़ी से कहा—आऊँगा नहीं ? तीन पन बीतकर चौथा पन शुरू हो गया। अब भी परलोक के लिए कुछ न करूँगा तो कब करूँगा ?

नवयुवक बोला—यदि शास्त्र मैंने कुछ समझा है तो कह सकता हूँ कि तीर्थ-दर्शन से जैसा परलोक बनता है, घर बैठकर भी वैसा ही बन सकता है।

वृद्ध—तो तुम क्यों आये ?

नवयुवक—मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि समुद्र देखने की बड़ी साध थी, उसी के लिए आया हूँ। बाद को और भी मीठे स्वर से कहने लगा—अहा ! मैंने क्या-क्या देखा ! जन्म-जन्मान्तर में भी न भूलूँगा।

'दूरादयश्चक्रनितस्य तन्वी
तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बु राशे-
र्धारा निबद्धेव कलङ्क-रेखा।'

वृद्ध का ध्यान कविता की ओर नहीं था। नाविक परस्पर जो बातचीत कर रहे थे, उसे ही वह एकाग्र मन से सुन रहे थे।

एक नाविक दूसरे से कह रहा था—ऐ भाई ! यह तो बहुत बुरा हुआ—न जाने किस महासागर में आ पड़े—कौन देश में आ गये, समझ में नहीं आता ।

बोलनेवाले के स्वर से वृद्ध को किसी विपत्ति की आशंका-सी प्रतीत हुई । शंकित चित्त से उन्होंने पूछा—"माझी, क्या हुआ है ?" माझी ने उत्तर नहीं दिया, किन्तु युवक उत्तर की प्रतीक्षा न कर बाहर आया । बाहर आकर उसने देखा कि प्रायः प्रभात हो गया है । चारो दिशायें बहुत ही गाढ़े कुहरे में ढकी हैं । आकाश, नक्षत्र, चन्द्र, सितारे किसी तरफ कुछ भी सूझ नहीं पड़ता । वह समझ गया कि नाविकों को दिशा-भ्रम हो गया है । वे किस तरफ जा रहे हैं इसकी निश्चित जानकारी उन्हें नहीं हो रही है—कहीं बाहरी समुद्र में पड़कर कूल-किनारा न मिलने से मर न जायं, इसी आशंका से वे डरे हुए हैं ।

कुहरे से बचने के लिये नाव के सामने परदा लगा था । इसलिए नाव के अन्दर के यात्री इन बातों को कुछ भी न जान सके । किन्तु नवयुवक यात्री ने स्थिति समझकर वृद्ध से विशेष रूप से बताया, तब नाव के भीतर बहुत कोहराम मच गया । जो कई स्त्रियाँ नाव में थीं, उनमें से कोई-कोई बातचीत की आवाज से जाग गयी थीं, सुनते ही वे आर्त्त स्वर से चिल्ला उठीं । बूढ़े ने कहा--किनारे ले चलो ! किनारे ले चलो ! किनारे ले चलो !

युवक ने मुस्कराकर कहा—किनारा कहाँ है ? यह जान पाते तो इतनी विपत्ति ही क्यों आती ?

यह सुनकर नौकारोहियों में कोलाहल और भी बढ़ गया । युवक यात्री ने किसी तरह उन लोगों को शान्त करके नाविक से कहा--आशंका की बात कुछ नहीं है, सवेरा हो चला है--चार-पाँच दण्ड में सूर्योदय हो जायगा । इतने समय में नाव न डूबेगी । तुम लोग अब

डाँड़ चलाना बन्द करो, बहाव में नाव जहाँ जाय, जाने दो; बाद को, धूप निकल आने पर, कुछ निश्चय किया जायगा।

नाविक लोग इस परामर्श से सहमत हो तदनुसार काम करने लगे। बड़ी देर तक नाविक निश्चेष्ट खड़े रहे। भय के मारे यात्रियों के प्राण सूख रहे थे। हवा जरा भी नहीं थी। इसलिए वे लहरों के थपेड़ों का हाल बहुत जान न सके। तो भी सभी ने समझ लिया कि मृत्यु निकट है। पुरुष चुपचाप दुर्गा नाम जपने लगे, स्त्रियाँ ऊंचे स्वर से तरह-तरह के शब्द-विन्यास से रोने लगीं। एक स्त्री गङ्गासागर में सन्तान विसर्जित कर आयी थी, बच्चे के जल में गिरने पर फिर उसे निकाल नहीं सकी थी,—केवल वही नहीं रोयी।

प्रतीक्षा करते-करते अनुमान से दिन प्राय: एक पहर चढ़ आया। ऐसे ही समय नाविक अकस्मात् समुद्र के पाँच पीरों के नाम पुकार-पुकारकर बड़ा शोरगुल करने लगे। सभी पूछ बैठे—"क्या है! क्या है! माझी, क्या हुआ?" माझी भी एक स्वर से शोर करते हुए कहने लगे—"धूप निकल आयी! धूप निकल आयी। किनारा! किनारा! किनारा!" सभी यात्री उत्सुक होकर परदे के बाहर आ गये। कहाँ आ गये हैं, क्या हालत है, देखने लगे। उन लोगों ने देखा, सूर्य चमकने लगा है, कुहरे के अंधकार से दिशाएँ एकदम मुक्त हो गयी हैं। दिन प्राय: एक पहर चढ़ चुका है। जिस स्थान पर नाव आ लगी है वह महासमुद्र नहीं है बल्कि नदी का मुहाना है किंतु वहाँ नदी जितनी चौड़ी है वैसी कहीं भी नहीं है। एक ओर किनारा नाव के अत्यन्त निकट है—कोई पचास हाथ से भी कम है; किन्तु दूसरा तट दिखाई भी नहीं पड़ता! और जिधर भी देखा जाय, अनन्त जलराशि, चंचल सूर्य-किरण-मालाओं से चमकती हुई आकाश के छोर पर क्षितिज के साथ मिल रही है। निकट का जल कीचड़ से गँदला

साधारण नदी-जल की तरह है। किन्तु दूरस्थ जलराशि स्वच्छ नीले रंग की है। आरोहियों ने समझा कि वे महासमुद्र में आ गये थे किन्तु सौभाग्य यही है कि किनारा निकट है, डर की कोई बात नहीं है। सूर्य की गति देखकर यात्रियों ने दिशाएँ पहचानीं। सामने जो तटभूमि दिखाई पड़ रही थी, सहज ही में समुद्र के पश्चिम तट की भूमि समझ पड़ी। तट पर से नाव कुछ ही दूर एक नदी मंदगामी कलधौत प्रवाहवत् समुद्र में आ मिली थी। डेल्टा के उस स्थान के दायें भाग में बालुकामय वृहत् भूमिखण्ड पर टिटिहा अदि पक्षी अगणित संख्या में किलोल कर रहे थे। यह नदी आजकल रसूलपुर की नदी कहलाती है।

दूसरा परिच्छेद

समुद्र के किनारे

"Ingratitude ! thou marble-hearted friend !"

—King Lear

आरोहियों की उत्साह भरी बातें खत्म होने पर नाविकों ने प्रस्ताव किया कि ज्वार आने में अभी कुछ देर है;—इसी बीच यात्री लोग सामने की रेती पर रसोई बनाकर भोजन कर लें। तब जलोच्छ्वास के पहले ही वे स्वदेश की ओर यात्रा कर सकेंगे। यात्री भी इस परामर्श से सहमत हो गये। नाविकों ने नाव किनारे लगा दी। आरोही उतरकर स्नानादि प्रात.कृत्यों से निवृत्त होने लगे।

स्नानादि के बाद रसोई की तैयार करने में और एक नई अड़चन आ गई—नाव पर रसोई पकाने के लिए ईंधन नहीं था। बाघ के डर से ऊपर से लकड़ी लाना किसी ने भी स्वीकार नहीं किया।

अन्त में, सब के उपवास की घड़ी देख बूढ़े ने पूर्वोक्त युवक को सम्बोधित कर कहा—"भाई नवकुमार ! तुम इसका कुछ उपाय न करोगे तो इतने आदमी भूखों मर जायँगे ।"

नवकुमार ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा—अच्छा, मैं ही जाता हूं । कुल्हाड़ी दो, और डंडा लेकर एक आदमी मेरे साथ चलो ।

किसी ने भी नवकुमार के साथ जाना स्वीकार नहीं किया ।

"खाते समय सबको समझा जायगा" कहकर नवकुमार कमर कस, हाथ में कुल्हाड़ी लिये, अकेले लकड़ी लाने चल पड़े ।

तट के ऊपर चढ़ने पर नवकुमार ने देखा कि जितनी दूर नजर पहुँच रही है, उतनी दूर किसी भी स्थान में कहीं बस्ती का चिह्न जरा भी नहीं है, केवल जंगल है । किन्तु उस वन में बड़े वृक्ष नहीं हैं;-- केवल जहाँ-तहाँ छोटी-छोटी झाड़ियाँ मण्डलाकार कहीं-कहीं उगी हुई हैं । उनमें नवकुमार को ईंधन योग्य लकड़ी नहीं मिली । इस कारण उपयुक्त वृक्षों की खोज में नदी-तट से अधिक दूर जाना पड़ा । अन्त में काटने योग्य एक पेड़ मिलने पर उससे जरूरत की लड़की काट कर जुटा ली । लकड़ी ढोकर लाना एक और कठिन काम मालूम हुआ । नवकुमार निर्धन के लड़के नहीं थे, इन कामों का अभ्यास न था । पूरा विचार किये विना ही लकड़ी जुटाने के लिए चल पड़े थे, किन्तु अब लकड़ी का बोझ ढोना बहुत कष्टकर प्रतीत हुआ । जो भी हो, किसी काम में लग जाने पर थोड़े में ही हार जाने की आदत नवकुमार की नहीं थी । इसलिए वे किसी तरह लकड़ी का बोझ लाने लगे । कुछ दूर ढो लाने पर, थोड़ी देर बैठकर विश्राम करते, फिर ढोते, इसी तरह आने लगे ।

इसी लिये नवकुमार के लौटने में विलम्ब होने लगा । इधर उनके साथी उनके आने में देर देखकर घबड़ाने लगे । उनके मन में आशंका हुई कि नवकुमार को बाघ ने मार डाला । अनुमान से अधिक समय बीत

जाने पर उन लोगों के मन में ऐसा ही विचार जम गया। तो भी, किसी को यह साहस नहीं हुआ कि किनारे जाकर कुछ दूर आगे बढ़ उनकी खोज करे।

नाव के आरोही इस तरह कल्पना कर ही रहे थे कि उसी समय जल के बीच भयंकर कल्लोल सुन पड़ा। नाविक समझ गये कि ज्वार चढ़ रहा है। नाविकों को इस बात की विशेष जानकारी थी कि इन जगहों में जलोच्छ्वास उठते समय किनारे की जमीन से लहरें ऐसे प्रचण्ड वेग से टकराती हैं कि उस समय नाव आदि तट के पास रहने से टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। इस कारण वे लोग बहुत जल्दबाजी के साथ नाव का बन्धन खोल नदी के बीच ले जाने लगे। नाव अभी खुली भी नहीं थी कि सामने की रेती जलमग्न हो गई, यात्रियों को बहुत ही हड़बड़ी में नाव पर चढ़ने का अवसर मिला। चावल आदि जो-जो सामग्री रेती पर रखी हुई थी, सब ही जल में बह गई। दुर्भाग्य-वश नाविक सुनिपुण नहीं थे, वे नाव को सम्हाल नहीं सके। प्रबल जल-प्रवाह नाव को रसूलपुर नदी में ले जाने लगा। एक आरोही ने कहा—नवकुमार तो रह गये ? एक नाविक बोला—ओः तेरा नवकुमार कौन है ? उसे सियार खा गये।

जल अपने तेज बहाव से नाव को रसूलपुर की नदी में ले जाने लगा। यह सोचकर कि उसमें से लौटने में बड़ी मुसीबत होगी, नाविक जी जान से उससे बाहर निकलने की चेष्टा करने लगे। यहाँ तक कि उस माघ के महीने में भी उन लोगों के ललाट पर पसीना चूने लगा। ऐसे परिश्रम से नाव रसूलपुर नदी से बाहर आने तो लगी किन्तु नाव ज्यों ही बाहर आई, त्योंही वहाँ के और भी प्रबल प्रवाह से उत्तरमुखी होकर तीर की-सी गति से बह चली। नाविक उसको किंचित्‌मात्र भी सम्हाल न सके। नाव फिर नहीं लौटी।

जब जल का वेग इतना धीमा हो गया कि नाव की गति सम्हाली

जा सके तब यात्री रसूलपुर का मुहाना पार कर बहुत दूर पहुंच गये थे। अब नवकुमार के लिए लौटना चाहिए या नहीं, इस विषय की मीमांसा आवश्यक हुई। यहाँ यह बता देना जरूरी है कि नवकुमार के साथ यात्रा करनेवाले केवल उनके पड़ोसी थे, कोई भी अपने सगे सम्बन्धी या इष्टमित्र नहीं थे। उन लोगों ने विचार करके देखा कि वहाँ से लौट जाना एक और बड़ी ज़हमत है; एक और भाटे का इन्तज़ार करना होगा। बाद को रात हो जायगी और रात के समय नाव चलाई न जा सकेगी। इस कारण दूसरे दिन के ज्वार की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इतने समय तक सब को बिना खाये पड़े रहना होगा। दो दिन के निराहार से सब के प्राण निकलने की घड़ी आ जायगी। विशेषतः नाविक लौटने को राजी नहीं हैं। वे लोग बात माननेवाले नहीं। वे कह रहे हैं कि नवकुमार को बाघ ने मार डाला होगा। यही सम्भव है। तो फिर इतना कष्ट क्यों उठाया जाय ?

ऐसा विचार कर यात्रियों ने नवकुमार को साथ लिये बिना भी स्वदेश वापस जाना उचित समझा। नवकुमार उस भयानक समुद्रतट के वन में अकेले छोड़ दिये गये।

यह सुनकर यदि कोई यह प्रतिज्ञा कर लें कि—कभी दूसरों की उपवास से रक्षा करने के लिये ईंधन की लकड़ी जुटाने न जायँगे तो वे पापी हैं—इन्हीं यात्रियों की तरह पापी ! अपना उपकार करनेवाले को वन में छोड़ देना जिनका स्वभाव है, वे चिरकाल अपना उपकार करने वाले को वन में छोड़ते रहेंगे—किन्तु कितनी ही बार वन में क्यों न छोड़ते रहें, दूसरों के लिए ईंधन की लकड़ी जुटाना जिसका स्वभाव है, वह फिर अपनी जिन्दगी खतरे में डाल, दूसरों के लिए लकड़ी जुटाने जायगा ही। तुम अधम हो—इसीलिए मैं उत्तम क्यों न बनूंगा ?

तीसरा परिच्छेद

निर्जन वन में

"—Like a veil
Which if withdrawn, would but disclose the frown
Of one whose hate is mask'd but to assail
Thus to their hopeless eyes the night was shown
And grimly darken'd o'er the faces pale"
—'Don Juan.'

जिस स्थान में नवकुमार को छोड़कर सब यात्री चले गये थे, उसके निकट दौलतपुर और दरियापुर नामक दो छोटे-छोटे गाँव आजकल दिखाई पड़ते हैं। परन्तु हम जिस समय का वर्णन कर रहे हैं, उस समय उस स्थान में, मनुष्यों के रहने का कोई चिन्ह भी नहीं था, केवल जंगल ही जंगल दिखाई देते थे। किन्तु बंगदेश के अन्य स्थल की भूमि साधारणतः जैसी उपजाऊ है, इस अंचल में वैसी नहीं है। रसूलपुर के मुहाने से लेकर सुवर्णरेखा तक लगातार कई योजन तक फैली हुई एक बालुका-स्तूप-श्रेणी विराज रही है। जमीन और कुछ ऊँची होती तो उस स्तूप-श्रेणी को बालू की छोटी पर्वतश्रेणी कह सकते थे। अब लोग उसे बलुई टीला कहते हैं। उन बलुई टीलों के सफेद शिखर मध्याह्न सूर्य-रश्मियों से दूर अपूर्व प्रभापूर्ण दिखाई पड़ते हैं। उसके ऊपर बड़े वृक्ष नहीं उगते। स्तूपों के निचले भाग में साधारण छोटे-छोटे पौधों के जंगल पैदा भी हो जाते हैं, किन्तु मध्य स्थान में या ऊपर के स्थानों में प्रायः छाया-शून्य सफेदी की शोभा ही दिखाई

पड़ती रहती है। निचले स्थानों को सुशोभित करनेवाले वृक्षों में जंगली महुए, झाऊ की झाड़ियाँ और जंगली फूल ही अधिक हैं।

ऐसे नीरस जंगली प्रदेश में नवकुमार साथियों द्वारा छोड़ दिये गये। लकड़ियों का बोझ लिये नदी के किनारे पहुँचने पर उन्हें नाव नहीं दिखाई पड़ी। सहसा वे बहुत ही डर गये, किन्तु यह न समझ सके कि साथी लोग उनको बिलकुल छोड़कर चले ही गये हैं। उन्होंने विचार किया कि ज्वार के वेग से, रेती के डूब जाने से, उन लोगों ने पास के किसी अन्य स्थान में नाव लगा दी है, शीघ्र ही ढूंढ़ लेंगे। इसी आशा से वहाँ थोड़ी देर तक बैठे प्रतीक्षा करते रहे किन्तु नाव नहीं आई। नाव के आरोहियों में से कोई दिखाई नहीं पड़ा। नवकुमार भूख से अत्यन्त व्याकुल थे। और अधिक प्रतीक्षा न कर नाव की खोज में किनारे-किनारे घूमने लगे। कहीं भी नाव का पता नहीं चला, लौटकर फिर पहले के स्थान में आये। तब भी नाव न देख उन्होंने सोचा, ज्वार के वेग में नाव बह गई है। अब उल्टा स्रोत चलने पर उसके साथ बहकर आने में साथियों को स्वाभाविक ही देर होगी। किन्तु ज्वार भी खत्म हो गया। तब उन्होंने सोचा प्रतिकूल स्रोत का वेग तेज होने के कारण ज्वार के साथ नाव वापस नहीं आ सकी, अब भाटे में अवश्य ही लौटती होगी। किन्तु भाटा भी धीरे-धीरे तेज हो गया. धीरे-धीरे दिन बीत चला, सूर्यास्त हो गया। यदि नाव लौटनेवाली होती तो अब तक अवश्य लौट आती।

आखिर नवकुमार को यह विश्वास हो गया कि या तो जलोच्छ्वास से उठनेवाली हिलोरों से नाव जल में डूब गई है, अथवा साथी लोग उनको इस विजन वन में छोड़कर चले गये हैं।

पर्वत के नीचे से चलनेवाले व्यक्ति के शिर पर ऊपर से एक शिलाखण्ड गिरकर जैसे उस व्यक्ति को एकदम पीस डालता है, उसी तरह मन में यह धारणा आते ही नवकुमार का हृदय एकदम बैठ गया।

इस समय नवकुमार के मन की अवस्था जैसी थी, उसका वर्णन करना कठिन है। साथियों की मृत्यु की आशंका से उनको दुःख व कष्ट तो अवश्य हुआ किन्तु अपनी असहाय संकटापन्न अवस्था पर ध्यान जाते ही वे इस शोक को शीघ्र ही भूल गये। विशेषतः जब मन में यह विचार घर करने लगा कि संभव है साथी लोग उन्हें छोड़कर चले गये हों, तब क्रोध के वेग से वह शोक दूर होने लगा।

नवकुमार ने देखा, यहाँ कोई गाँव नहीं है, आश्रय नहीं है, मनुष्य नहीं, भोजन का भी ठिकाना नहीं, पीने को जल नहीं, नदी का जल बेहद खारी है, इधर भूख-प्यास से उनका शरीर तड़पड़ा रहा था। भयंकर जाड़े से बचने के लिए कोई आश्रय नहीं है, शरीर पर ओढ़ना तक नहीं है। इस हिमाद्रि-वायु-सञ्चारित नदी-तट पर तुषार बरसाने वाले आकाश के नीचे निराश्रयावस्था में बिना ओढ़े सो रहना पड़ेगा। हो सकता है कि रात भर में बाघ, भालू आकर खा डालें। आज नहीं तो कल खायेंगे। मृत्यु एकदम निश्चित है।

मन चंचल होने के कारण नवकुमार एक स्थान पर अधिक समय बैठे न रह सके। नदी-तट छोड़कर ऊपर चले गये। इधर-उधर टहलने लगे। धीरे-धीरे अँधेरा छा गया। शिशिराकाश में नक्षत्रमण्डली चुपचाप उगने लगी,—जिस तरह नवकुमार के गाँव में वे उगती हैं, उसी तरह उगने लगीं। अँधियारी में सर्वत्र निर्जनता थी,—आकाश, मैदान, समुद्र, सर्वत्र सन्नाटा था, केवल अविरल कल्लोलित समुद्र-गर्जन, और कभी-कभी जंगली पशुओं की बोली सुनाई पड़ जाती थी। तो भी नवकुमार उस अन्धकार में, शीत बरसानेवाले आकाश के नीचे, वालुका-स्तूप के चारो तरफ घूमने लगे। कभी उपत्यका में, कभी ऊँचे मैदान में, कभी स्तूपों के निचले भाग में, कभी स्तूपों की चोटियों पर टहलने लगे। चलते-चलते पग-पग पर हिंस्र पशुओं से आक्रान्त होने की आशंका थी, किन्तु एक स्थान पर बैठे रहने में भी वही खतरा था।

टहलते-टहलते नवकुमार को थकावट सताने लगी। सारा दिन अनाहार रहने के कारण शरीर सनसनाने लगा। एक जगह बलुई ढूह के किनारे पीठ टेककर बैठ गये। घर की सुख-शय्या याद आई। जब शारीरिक और मानसिक क्लेश की थकान व चिन्ता घेर लेती है, तब कभी-कभी नींद भी उसके साथ ही आ जाती है। नवकुमार चिन्ता करते-करते तन्द्राभिभूत हो गये। मालूम होता है कि यदि ऐसा नियम न होता तो सांसारिक क्लेश का न रुकनेवाला वेग सभी सर्वदा न सह सकते।

चौथा परिच्छेद

स्तूप शिखर पर

"——सविस्मये देखिला अदूरे
भीषण दर्शन मूर्ति।"

—मेघनादवध।

जब नवकुमार की नींद टूटी, तब रात गहरी हो चुकी थी। अभी तक उनको बाघ ने मार नहीं डाला, इससे उनको बड़ा कौतुक मालूम हुआ। इधर-उधर गौर से देखने लगे कि बाघ आ रहा है या नहीं। अकस्मात् सामने बहुत दूर पर एक किसी प्रकार का उजाला-सा दिखाई पड़ा। केवल भ्रम न हो गया हो, इसलिए नवकुमार ध्यान से उस तरफ ताकने लगे। उजाले का आकार धीरे-धीरे बढ़ने लगा, पहले से अधिक चमकीला होने लगा—उनको विश्वास हो गया कि यह उजाला दहकती आग के ही कारण है। विश्वास होते ही नवकुमार की जीवन-आशा पुनः जाग्रत हो उठी। यहाँ मनुष्य के न रहने से उजाला होना सम्भव नहीं। नवकुमार उठ पड़े। जिधर वह उजाला था,

उसी ओर बढ़ चले। एक बार उन्होंने सोचा, यह उजाला क्या किसी भूत की करामात है ?—हो भी सकती है। किन्तु शंका में पड़े निश्चेष्ट बैठे रहने से क्या जीवन की रक्षा हो सकती है ? यह सोचकर निर्भीक चित्त से उजाले की ओर कदम बढ़ाते चल पड़े। वृक्ष, लताएँ, बालुका-स्तूप पग-पग पर उनका प्रतिरोध करने लगे। वृक्ष, लताओं को रौंदते एवं बालुका-स्तूपों को लाँघते हुए नवकुमार चलते रहे। उजाले के निकट पहुंचकर उन्होंने देखा कि एक बालुका-स्तूप के शिखर पर आग जल रही है ! उसके प्रकाश में शिखर पर बैठा हुआ मनुष्य आकाश-पट पर अंकित चित्र-सा दिखाई पड़ रहा है। नवकुमार शिखरासीन व्यक्ति के पास पहुँचने का दृढ़ संकल्प कर तेज गति से शिखर पर चढ़ने लगे। चढ़ते-चढ़ते उन्हें कुछ शंका होने लगी, तो भी स्थिर कदमों से स्तूप पर चढ़ने लगे। बैठे हुए व्यक्ति के सामने पहुंचकर उन्होंने जो-जो देखा, उससे उनके रोंगटे खड़े हो गये। ठहरें या लौट जायँ, इसका निश्चय न कर सके।

शिखर पर बैठा हुआ मनुष्य आँखें बन्द किये ध्यान कर रहा था—नवकुमार को वह पहले देख न सका। नवकुमार ने देखा कि उसकी उम्र लगभग ५० वर्ष की होगी। वह कोई सूती कपडा पहने हुए है या नहीं, यह ठीक मालूम न हो सका। कमर से घुटनों तक बाघाम्बर से ढका हुआ था। गले में रुद्राक्ष की माला थी। बड़ा मुख-मण्डल लम्बी दाढ़ी और जटाओं में छिपा हुआ था। सामने लकड़ी का कुंदा जल रहा था—उसी आग की उजियारी देख नवकुमार उस स्थान पर आये थे। नवकुमार को एक विकट दुर्गन्ध का आभास हुआ। उसके आसन पर दृष्टि पढ़ते ही उसका कारण समझ गये। जटाधारी साधक एक कटे सिरवाले सड़े मुर्दे पर बैठा था। और भी भय से उन्होंने देखा कि सामने एक नर-कपाल पड़ा हुआ है, उसमें लाल रंग का तरल पदार्थ भी भरा है—चारो तरफ स्थान-स्थान पर हड्डियाँ बिखरी

हुई हैं—यहाँ तक कि ध्यानावस्थित व्यक्ति के गले की रुद्राक्ष-माला में भी हड्डी के ही छोटे-छोटे टुकड़े गुँथे हुए हैं। नवकुमार किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। आगे बढ़ जायँ या वह स्थान त्यागकर चल दें, यह निर्णय न कर सके। वे कापालिकों के बारे में सुन चुके थे। समझ गये कि यह कोई भयानक कापालिक है।

जिस समय नवकुमार वहाँ पहुँचे थे, उस समय वह कापालिक मन्त्र-साधन, जप या ध्यान में मग्न था। नवकुमार को देख उसने आँख भी नहीं खोली। बहुत देर बाद उसने पूछा—कस्त्वम् ?

नवकुमार ने उत्तर दिया—ब्राह्मण।

कापालिक "तिष्ठ" कहकर पहले के काम में लग गया। नवकुमार खड़े रहे।

इस तरह आधा पहर बीत गया। अन्त में कापालिक ने उठकर नवकुमार को पूर्ववत् संकेत से कहा—मामनुसर।

यह बात निश्चित कही जा सकती है कि किसी दूसरे समय नवकुमार कदापि उसका साथ नहीं देते। किन्तु इस समय भूख-प्यास से प्राण निकल रहे थे, इस कारण बोले—प्रभु की जैसी आज्ञा। किन्तु मैं भूख-प्यास से बहुत व्याकुल हूं, भोजन-सामग्री कहाँ मिलेगी, कृपाकर बताइए।

कापालिक बोला—तुम भैरवी द्वारा भेजे गये हो। मेरे साथ आओ, भोजन-सामग्री मिलेगी।

नवकुमार कापालिक के पीछे-पीछे जाने लगे। दोनो बहुत देर तक रास्ता चलते रहे—रास्ते में किसी ने कोई बात नहीं की। अन्त में एक फूस की झोपड़ी मिली। कापालिक ने उसमें पहले प्रवेश करके नवकुमार को भीतर आने की अनुमति दी, और किसी ऐसे उपाय से जिसे नवकुमार न समझ सके, उसने एक लकड़ी के चैले में आग जलाई। उसके उजाले से नवकुमार ने देखा कि वह झोपड़ी पेड़ की

पत्तियों से छाई है। उसके अन्दर कई वाघाम्बर–पड़े हुए हैं—एक घड़े में जल और कुछ फलफूल रखे हैं।

कापालिक ने आग जलाकर कहा—जो कुछ फलमूल यहाँ हैं, उन्हें तुम खा सकते हो। पत्ते का दोना बनाकर घड़े का जल पीना। बाघाम्बर हैं, इच्छा हो तो सो रहना। निर्विघ्न व निर्भय होकर रहो—बाघ से मत डरना। मुझसे फिर भेंट होगी। जब तक भेंट न हो तब तक यह कुटिया मत छोड़ना।

यह कहकर कापालिक चला गया। वही साधारण फलमूल खाकर और वही जरा खारी जल पीकर नवकुमार परम तृप्त हुए। बाद को वाघाम्बर पर लेटकर सो रहे। सारा दिन कष्ट झेलने के कारण शीघ्र ही गहरी नींद आ गई।

पाँचवाँ परिच्छेद

समुद्र तट पर

"——योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते।
विभर्षि चाकारमनिर्वृतानां
मृणालिनी हैममिवोपरागम्॥" —रघुवंश।

सवेरे उठकर नवकुमार सहज ही अपने घर जाने का उपक्रम करने लगे। विशेषत: इस कापालिक के साथ रहना किसी भी तरह उन्हें कल्याणकर नहीं मालूम हुआ। किन्तु अभी इस पथविहीन वन में कैसे रास्ता पहचानकर घर चले जायं? कापालिक अवश्य ही रास्ता पहचानता है, पूछने से क्या बता न देगा? विशेषत: अभी तक तो कापालिक ने उनके प्रति कोई संदेहजनक व्यवहार नहीं किया है—तो फिर क्यों वे उसे डर रहे हैं? इधर कापालिक ने उससे भेंट न होने

तक उन्हें कुटिया छोड़ने को मना किया है, उसकी बात न मानने से रुष्ट हो जाने की आशंका है। नवकुमार सुन चुके थे कि कापालिक मन्त्रबल से असाध्य कर्म कर डालने में भी समर्थ होते हैं, इसलिए उसकी बात न मानना अनुचित है; इत्यादि विचार करके नवकुमार ने अन्त में कुटिया में ठहरने का ही निश्चय किया।

किन्तु धीरे-धीरे दिन का तीसरा पहर बीतने को था, तो भी कापालिक नहीं लौटा। पिछले दिन का उपवास, आज अब तक अनशन, इससे भूख प्रबल हो उठी। कुटिया में जो थोड़े-से फलमूल थे उन्हें वे पिछली रात को ही खा चुके थे--अब कुटिया छोड़कर कहीं फलमूल की खोज न करने से भूख से प्राण निकल जायँगे। थोड़ा दिन रहते भूख से पीड़ित नवकुमार आहार की तलाश में निकल पड़े।

नवकुमार फल खोजते हुए पास के बालू के टीलों के चारो ओर घूमने लगे। बालू में जो दो-एक पेड़ उगे हैं उनके फलों को चखकर देखा, एक फल बादाम की तरह अति स्वादिष्ट था। उन्हें खाकर भूख मिटाई।

जिस बालुका-स्तूप-श्रेणी का उल्लेख किया जा चुका है उसकी चौड़ाई कम थी। इस कारण थोड़ी ही देर चलकर नवकुमार उसे पार कर गये। उसके बाद बालुका-विहीन निविड़ वन में पहुँच गये। जो लोग थोड़ी देर के लिए भी अनज़ान वन में घूम चुके हैं, वे जानते हैं कि पथहीन जंगल में थोड़ी ही देर में रास्ता भटक जाना पड़ता है। नवकुमार की यही हालत हुई। कुछ दूर जाने पर, फिर समझ न सके कि झोपड़ी किस रास्ते के पास छोड़ आये हैं। गंभीर जल-कल्लोल उनके कानों में सुनाई पड़ने लगा। वे समझ गये कि यह समुद्र की गर्जना है! थोड़ी देर बाद अकस्मात् वन से निकलकर उन्होंने देखा कि सामने ही समुद्र है। अनन्त विस्तृत नील जलराशि सामने देख उनका हृदय ख़ुशी से नाच उठा। रेतीले तट पर जाकर वे बैठ गये।

फेनिल, नील, अनन्त समुद्र ! दोनों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, वहाँ तक लहरों की उछाल से फेंके गये फेनों की पंक्तियाँ थीं। शुभ्र कुसुमों से गुंथी मालाओं के ढेर की तरह शुभ्र फेन-पंक्तियाँ स्वर्ण-सी चमकदार रेती पर जमी हुई थीं। वनराशि केशधारिणी सर्वधात्री पृथिवी के सर्वथा उपयुक्त अलकाभरणवत् नील अनन्त जलराशि में सहस्रों स्थलों पर फेनिल लहरें उछल रही थीं। यदि किसी समय ऐसा प्रचण्ड तूफान आ जाय कि नक्षत्रमालाएँ हजारों की संख्या में स्थानच्युत होकर नीले आकाश में डगमगाने लगें, तभी सागर में उठनेवाली इन फेन-तरंगों का स्वरूप समझ में आ सकता है। इस समय अस्ताचलगामी सूर्य की मृदुल किरणों से नील जल का एक अंश पिघले हुए स्वर्ण की तरह चमक रहा था। बहुत दूर किसी यूरोपीय व्यापारी का एक समुद्री जहाज श्वेत डैंने फैलाये बृहत् पक्षी की तरह समुद्र के हृदय पर उड़ा जा रहा था।

कितनी देर तक, नवकुमार तट पर बैठे अनमने भाव से समुद्र की शोभा देखते रहे, इसका उनको कुछ ध्यान ही नहीं रहा। सन्ध्या का घना अंधकार काले जल पर छा गया तब नवकुमार को होश आया कि उस आश्रम का पता लगाना चाहिए। लम्बी साँस छोड़कर वे उठ खड़े हुए। लम्बी साँस छोड़ने का कारण क्या था, यह मैं बता नहीं सकता—उस समय उनके मन में किस भूतपूर्व सुख की याद उठ रही थी, कौन बतावे ? खड़े होने के साथ ही समुद्र को पीछे छोड़ दूसरी तरफ घूम पड़े। घूमते ही, एक अपूर्व मूर्ति दिखाई पड़ी ! उस गंभीर-नाद करनेवाले समुद्रतट पर, बालू की रेती पर, सन्ध्या के धुंधले प्रकाश में अपूर्व रमणी-मूर्ति ! केशपुंज बिखरा हुआ, वेणी में गुंथा नहीं था। समेट कर एड़ी तक लटकी हुई थी वह सर्पवत् केशराशि—उसके सम्मुख एक शरीर-रत्न था, मानो चित्रपट पर चित्र दिखाई पड़ रहा था। केश-गुच्छों की सघनता के कारण मुखमण्डल पूर्णरूप से दिखाई

नहीं पड़ता था—तो भी बादलों को हटाकर छिटकी हुई चन्द्रकिरणों की तरह प्रतीत हो रहा था। विशाल नेत्रों के कटाक्ष अति स्थिर, अति स्निग्ध शीतल, अचंचल, साथ ही ज्योतिर्मय थे। वह कटाक्ष, इस सागर-हृदय पर चमकनेवाली चन्द्रकिरणों की तरह कोमल उज्ज्वल दीप्ति दे रहा था। बिखरे बालों ने कंधो और दोनो बाहों को ढँक लिया था, कंधे बिलकुल दिखाई ही नहीं पड़ते थे। दोनो बाहों की मृणालसदृश शोभा कुछ-कुछ दिखाई पड रही थी। उस स्त्री के शरीर पर गहने बिलकुल नहीं थे। उसमें जो एक तरह की मोहिनी शक्ति थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अर्धचन्द्र से निकलनेवाली चाँदनी की तरह शुभ्र उसका वर्ण था, नितान्त कृष्णवर्ण के थे उसके केश-गुच्छ। धवल-कृष्ण के इस मिलान ने दोनो ही की जो शोभा निखार दी थी उसे उस गंभीर शब्दकारी सागर-तट पर सन्ध्यालोक में न देखने से, उसकी मनमोहिनी शक्ति का अनुमान नहीं किया जा सकता।

ऐसे दुर्गम स्थान में अकस्मात् देवीमूर्त्ति देखकर नवकुमार अवाक् हो खड़े रहे। निस्तब्ध होकर ताकते रहे। वह स्त्री भी, बिना हिले-डुले अनिमेष नेत्रों की स्थिर-दृष्टि नवकुमार के मुँह पर गड़ाये ताकती रही। दोनो में फर्क यही था कि नवकुमार की दृष्टि चौंके हुए मनुष्य की दृष्टि की तरह थी, किन्तु महिला की दृष्टि में वह लक्षण नहीं था। किन्तु उसमें उत्कण्ठा विशेष रूप से स्पष्ट थी।

बहुत देर तक समुद्र के जनहीन तट पर दोनो इसी तरह ताकते रहे। बड़ी देर के बाद युवती का कण्ठस्वर सुनाई पड़ा। उसने अति मृदु स्वर से कहा,—पथिक ! क्या तुम रास्ता भटक गये हो ?

इस कण्ठस्वर के साथ नवकुमार की हृदय-तन्त्री कम्पित हो उठी। विचित्र हृद्‌यंत्र की तंत्रियाँ कभी-कभी ऐसी लयहीन हो जाती हैं कि कितनी ही चेष्टा क्यों न की जाय, किसी तरह भी परस्पर मिलतीं नहीं; किन्तु एक शब्द से, एक स्त्रीकण्ठ-सम्भूत स्वर के प्रभाव से स्वर

एकाएक मिल जाते हैं। सब ही लययुक्त हो जाता है, संसार के सारे कामकाज सुखमय संगीत-प्रवाह सरीखे जान पड़ते हैं। नवकुमार के कानों में उसी तरह यह मधुर-ध्वनि गूंज उठी।

"पथिक ! तुम क्या रास्ता भटक गये हो ?"—यह ध्वनि नवकुमार के कानों में प्रवेश कर गई। इसका क्या अर्थ है, इसका क्या उत्तर देना चाहिए, कुछ भी समझ में नहीं आया। ध्वनि मानो हर्ष से थिरकती हुई घूमने लगी, मानो वह ध्वनि हवा में फैल गई, वृक्षपत्रों में मर्मरित होने लगी, सागरनाद में प्रतिध्वनित होने लगी। सागरवसना पृथ्वी सुन्दरी थी, रमणी सुन्दरी थी, ध्वनि भी सुन्दर थी, हृदय-तन्त्री में सौन्दर्य का राग उठने लगा।

स्त्री ने कोई उत्तर न पाकर कहा—"आओ।" इतना कह वह युवती चल पड़ी, उसके कदम पड़ते दिखाई नहीं देते थे। वसन्त ऋतु में मन्द समीर-प्रवाह से संचारित श्वेत मेघदण्डों की तरह अलक्ष्य छोटे-छोटे कदम डालती हुई चलने लगी। नवकुमार यन्त्र की पुतली की तरह पीछे चल पड़े। एक जगह एक छोटा-सा वन पार करना पड़ता था। वन के अन्दर घुसने पर फिर सुन्दरी उन्हें दिखाई नहीं पड़ी। वन पार करने पर उन्होंने देखा कि सामने वही कुटिया है।

छठा परिच्छेद

कापालिक के साथ

"कथं निगड़संयतासि द्रुतम् नयामि भवतीमित:"—रत्नावली

नवकुमार कुटिया में प्रवेश कर दरवाजा बन्द कर, हथेली पर माथा रख बैठ गये। उन्होंने फिर जल्दी शिर नहीं उठाया।

यह कोई देवी है ?—मानवी है—या कोई कापालिक का माया

जाल है ? नवकुमार स्तब्ध हो मन ही मन इसी बात पर विचार-मन्थन करने लगे। किन्तु समझ कुछ भी न सके।

अनमने रहने के कारण नवकुमार ने एक और बात पर ध्यान नहीं दिया था। उस कुटिया में उनके आने के पहले से एक कुन्दा जल रहा था। बाद को रात काफी बीत जाने पर उन्हें याद पड़ा कि सन्ध्या-कालीन कृत्य अभी अधूरा ही पड़ा है--सारी चिन्ता छोड़कर, इस सम्बन्ध की अन्य कठिनाइयों पर विचार करने लगे। केवल आग ही नहीं, चावल आदि पाकोपयोगी कुछ-कुछ सामग्री भी वहाँ रखी थी। पानी घड़े में था। नवकुमार आश्चर्य में नहीं पड़े---उन्होंने सोचा कि यह भी कापालिक का ही काम है---यहाँ आश्चर्य की बात क्या है ?

"शस्यञ्च गृहमागतम्" बुरी बात नहीं है। "भोज्यञ्च उदरागतम्" कहने से और भी स्पष्ट हो जाती है। नवकुमार इस बात का माहात्म्य न समझते हों, ऐसी बात नहीं है। सायंकृत्य पूरा कर कुटिया से ही एक मिट्टी का बर्तन लेकर उसी में चावल आदि पकाकर उन्होंने पेटभर भोजन किया।

दूसरे दिन सबेरे बाघाम्बर-शय्या से उठ, नवकुमार तुरन्त ही समुद्रतट की ओर चल पड़े। पिछले दिन के आने-जाने के कारण आज रास्ता पहचानने में उन्हें अधिक कष्ट नहीं हुआ। वहाँ प्रातःकृत्य से निवृत्त हो प्रतीक्षा करने लगे। किसकी प्रतीक्षा करने लगे ? जिस मायाविनी मूर्ति को पहले वे देख चुके थे, वह फिर उसी जगह आयेगी ऐसी आशा नवकुमार के हृदय में कितनी प्रबल हो गई थी, यह मैं कह नहीं सकता---किन्तु उस स्थान को वे छोड़ न सके। काफ़ी दिन चढ़ आने पर भी वहाँ कोई नहीं आया। तब नवकुमार उस स्थान के चारो तरफ चक्कर लगाने लगे। ढूंढना व्यर्थ था। मनुष्य समागम का चिह्नमात्र भी न पा सके। फिर लौटकर उसी स्थान पर बैठ गये। सूर्य अस्त हो गया, अँधेरा छाने लगा। हताश हो नवकुमार कुटिया

में लौट आये। शाम को समुद्र-तट से लौटकर नवकुमार ने देखा कि कापालिक कुटिया में जमीन पर चुपचाप बैठा हुआ है। नवकुमार ने पहले कुशल-समाचार पूछा। कापालिक ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

नवकुमार ने कहा—अब तक प्रभु-दर्शन से मैं किस लिए वंचित रहा? कापालिक ने उत्तर दिया—मैं अपने व्रत में नियुक्त था।

नवकुमार ने अपने घर जाने की इच्छा व्यक्त की, कहा—रास्ता मैं नहीं पहचानता—राह-खर्च भी नहीं है। प्रभु से भेंट होने पर इसका यथोचित प्रबन्ध हो सकेगा, इसी आशा में बैठा हूं।

कापालिक ने केवल कहा—"हूँ! मेरे साथ आओ।" कहकर वह उठ खड़ा हुआ। घर जाने का कोई सुगम उपाय हो सकेगा, इस आशा से नवकुमार भी उसके पीछे हो लिये।

तब तक सन्ध्या का प्रकाश एकदम लुप्त नहीं हुआ था—कापालिक आगे-आगे, नवकुमार पीछे-पीछे चले जा रहे थे। अकस्मात् नवकुमार की पीठ पर किसी कोमल कर का स्पर्श अनुभव हुआ। पीछे की ओर घूमकर उन्होंने जो कुछ देखा, उससे वे स्तब्ध हो गये। वही एड़ी तक लटकी हुई घन केशधारिणी वनदेवी सामने खड़ी थी। पूर्ववत् चुप थी, हिलती-डोलती नहीं थी। कहाँ से यह मूर्ति अकस्मात् उनके पीछे आ गई। नवकुमार ने देखा, यह स्त्री अपने मुँह में अँगुली लगाये उनसे चुप रहने का इशारा कर रही है। निषेध की खास जरूरत भी नहीं थी। नवकुमार स्वयं बात ही क्या करते, विस्मित हो चुप खड़े हो गये। कापालिक यह सब कुछ भी न देख सका, आगे बढ़ता चला गया।

इतना दूर हो जाने पर कि कोई बात कापालिक को सुनाई न पड़ेगी, उस स्त्री ने मधुर स्वर से कोई बात कही। नवकुमार के कानों

में यह बात पहुँची,—कहाँ जा रहे हो ? मत जाओ। लौट जाओ—भाग जाओ।

बात समाप्त होते ही वह चली गई, उत्तर सुनने के लिए ठहरी नहीं। नवकुमार थोड़ी देर तक गुमसुम की तरह खड़े रहे। उसके पीछे-पीछे जाने के लिए व्यग्र हो उठे, किन्तु वह स्त्री किधर चली गई, कुछ निश्चय न कर सके। सोचने लगे—यह किसकी माया है ? या मुझे ही भ्रम हो गया है ? जो बात मैंने सुनी है वह तो विपत्ति-सूचक है, किन्तु यह कैसी चेतावनी है। तान्त्रिक लोग सब कुछ कर सकते हैं। तो क्या मैं भाग जाऊँ ? भाग जाने की राह कहाँ है ?

नवकुमार इसी तरह सोच-विचार कर रहे थे कि उन्होंने देखा, कापालिक उनको अपने साथ आते न देखकर लौट रहा है। कापालिक ने पूछा—देर क्यों कर रहे हो ?

जब लोग ऐसे समय किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, तब उन्हें जिस तरफ पहले बुलाया जाता है, उसी तरफ बरबस चल पड़ते हैं। कापालिक के बुलाने पर बिना कुछ कहे नवकुमार उसके पीछे-पीछे फिर चलने लगे।

कुछ देर चलने के बाद उन्होंने अपने सामने मिट्टी की दीवार से घिरी एक कुटिया देखी। उसे कुटिया या छोटा घर भी कह सकते हैं, किन्तु इस बात से हमें कोई जरूरत नहीं है। कुटिया के पिछवाड़े ही बालुकामय समुद्र-तट था। उस घर के पास से कापालिक नवकुमार को बालू पर ले चलने लगा। इतने ही में तीर की तरह पहले जो स्त्री दिखाई पड़ी थी, वही उनकी बगल से निकल गई। जाते समय उनके कानों में कहती गई—अब भी भाग जाओ। नरबलि के बिना तान्त्रिक की पूजा नहीं होती, यह क्या तुम नहीं जानते ?

नवकुमार के ललाट पर पसीना आ गया। दुर्भाग्यवश युवती की

यह बात कापालिक के कानों में भी पहुँच गई। उसने डाँटकर पुकारा —कपालकुण्डला!

नवकुमार के कानों में वह स्वर बादल की गर्जना की तरह ध्वनित हो उठा; कपालकुण्डला ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कापालिक नवकुमार का हाथ पकड़कर ले चलने लगा। नरहिंसक के कर-स्पर्श से नवकुमार का रक्त धमनियों में सैकड़ों गुने वेग से दौड़ने लगा—लुप्त साहस फिर लौट आया। उन्होंने कहा—हाथ छोड़ दीजिए।

कापालिक ने उत्तर नहीं दिया। नवकुमार ने फिर पूछा—मुझे कहाँ ले जा रहे हैं?

कापालिक ने कहा—पूजा के स्थान पर।

नवकुमार—किस लिए?

कापालिक—बलि चढ़ाने के लिए।

एक झटके से नवकुमार ने अपना हाथ खींचा। पूरी शक्ति लगा कर उन्होंने हाथ खींचा था। यदि कोई साधारण मनुष्य उनका हाथ पकड़े होता तो झटके के साथ मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ता। किन्तु कापालिक रंचमात्र भी नहीं हिला। नवकुमार की कलाई उसकी मुट्ठी में ही रही। नवकुमार की हड्डियों के जोड़ मानो टूट गये। अधमरे की तरह नवकुमार कापालिक के साथ-साथ चलने लगे।

रेती के बीचो बीच पहुँचकर नवकुमार ने देखा, पिछले दिन की तरह वहाँ बड़े कुन्दे में आग जल रही है। चारो ओर तांत्रिक पूजा का आयोजन है। नरकपाल में भरा मद्य रखा है किन्तु शव नहीं है। अनुमान से समझ गये कि आज उनको ही शव बनना पड़ेगा।

कुछ सूखी, मजबूत लताएँ और गुल्म वहाँ पहले से ही एकत्र कर रखे हुए थे। कापालिक उनसे नवकुमार को मजबूती से बाँधने लगा। नवकुमार ने अपने शक्तिभर बल प्रयोग किया; किन्तु बल प्रयोग जरा भी

फलदायक नहीं हुआ। उनको विश्वास हो गया कि इस उम्र में भी कापालिक के शरीर में मत्त हाथी का-सा बल है। नवकुमार का बल प्रयोग करना देख, कापालिक बोला,---मूर्ख ! किसलिए जी बचा रहा है ? तेरा जन्म आज सार्थक हो गया। भैरवी की पूजा में तेरा यह मांसपिण्ड अर्पित होगा। तेरी तरह मनुष्य का इससे अधिक सौभाग्य और क्या हो सकता है ?

कापालिक ने नवकुमार को दृढ़ता से बाँधकर रेतीले मैदान पर डाल दिया, और बलि के पूर्व जो पूजा आदि क्रियाएं की जाती हैं उनमें व्यस्त हो गया, तब तक नवकुमार बन्धन तोड़ने की बड़ी चेष्टा करते रहे। किन्तु सूखी लताएं अत्यन्त कड़ी थीं, बन्धन बहुत दृढ़ था। मृत्यु आसन्न प्रतीत हुई ! नवकुमार इष्टदेव के चरणों का एकाग्रचित्त से ध्यान करने लगे। एक बार उन्हें जन्मभूमि की याद पड़ गई, अपना सुखद गृह याद आ गया, बहुत दिनों से बिछुड़े पिता और माता के स्वरूप स्मृतिपट पर अंकित हो गये। दो-चार बूंद आँसू रेती पर गिरकर सूख गये। कापालिक बलि के पूर्व की सभी क्रियाएं समाप्त कर वध के लिए खड्ग उठाने को आसन छोड़कर उठा। किन्तु जहाँ खड्ग उसने रखा था, वहाँ वह नहीं मिला। आश्चर्य ! कापालिक कुछ विस्मित हुआ। उसे निश्चित याद था कि अपराह्न में खड्ग लाकर यथास्थान में उसने रखा था, और वहाँ से उसे हटाया भी नहीं था, तो फिर खड्ग गया कहाँ ? कापालिक ने इधर-उधर ढूंढा, कहीं नहीं पाया। तब उसने पूर्वकथित कुटिया की तरफ घूमकर कपालकुण्डला को पुकारा, किन्तु बार-बार पुकारने पर भी कपालकुण्डला ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब कापालिक की आँखें लाल हो गईं, दोनो भौंहें तन गईं। तेज कदम बढ़ाता हुआ वह घर की तरफ चल पड़ा, इसी मौके पर नवकुमार ने बन्धनलता को तोड़ डालने की एक बार फिर चेष्टा की—किन्तु वह चेष्टा भी निष्फल हुई।

ऐसे ही समय निकट बालू पर अति कोमल पदचाप हुई--यह पदध्वनि कापालिक की नहीं थी। नवकुमार ने आँखें घुमाकर देखा, वही मोहिनी—कपालकुण्डला है। उसके हाथ में खड्ग झूम रही है।

कपालकुण्डला ने कहा—चुप रहो! बोलना मत--खड्ग मेरे ही पास है—चुराकर मैंने रखा है।

यह कहकर कपालकुण्डला हाथ बढ़ाकर खड्ग से जल्दी-जल्दी लता-बन्धन काटने लगी। क्षणभर में उसने उनको बन्धन से मुक्त कर दिया। कहा—भाग चलो, मेरे पीछे-पीछे आओ, तुम्हें रास्ता दिखा देती हूँ।

इतना कहकर कपालकुण्डला तीर की तरह तेज गति से रास्ता दिखलाती हुई आगे-आगे चलने लगी। नवकुमार फुर्ती से उसके पीछे-पीछे लपककर चलने लगे।

सातवाँ परिच्छेद

खड्ग की खोज

"And the great lord of luna
Fell at that deadly stroke,
As falls on mount alvernus
A thunder-smitten oak,"

—Lays of ancient Rome.

इधर कापालिक ने घर का कोना-कोना तलाश किया। न तो खड्ग और न कपालकुण्डला ही दिखाई पड़ी। वह सन्दिग्ध चित्त से रेती पर लौट आया। वहाँ आने पर उसने देखा कि नवकुमार भी वहाँ नहीं हैं। अब तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। थोड़ी ही देर

बाद छिन्न लता-बन्धनों पर उसकी दृष्टि पड़ी। तब सारी स्थिति समझकर कापालिक नवकुमार की तलाश में दौड़ पड़ा; किन्तु वन में वे किस तरफ किस रास्ते से चले गये हैं, यह स्थिर करना दुःसाध्य था। अँधेरा होने के कारण किसी को भी देख नहीं सका। इसलिए बीच-बीच में सुनाई पड़नेवाले कण्ठस्वर पर लक्ष्य कर इधर-उधर घूमने लगा। किन्तु वह आवाज भी बराबर नहीं सुनाई पड़ती थी। इसलिए चारो तरफ विशेष रूप से देख पाने के अभिप्राय से एक ऊँचे बालू के टीले पर चढ़ गया। कापालिक एक किनारे से ऊपर चढ़ा। उसके दूसरी ओर वर्षा के जलप्रवाह से उस टीले की कगार खोखली हो गई थी, इसे वह नहीं जानता था। शिखर पर उसके पहुँचते ही उसके बोझ से वह पतनोन्मुख बालुका-शिखर धड़ाम से नीचे आ गिरा। उसके साथ पर्वत की चोटी से गिरे हुए भैंसे की तरह कापालिक भी नीचे आ गिरा।

आठवाँ परिच्छेद

पनाह मिली

"And that very night
Shall Romeo bear thee to Mantua."
—Romeo and juliet,

उस अमावस्या की घोर काली रात्रि में, दोनो भागते हुए हाँफते-हाँफते वन में घुस गये। वन का रास्ता नवकुमार को मालूम न था। केवल पथप्रदर्शक षोड़शी को लक्ष्य कर उसके साथ चलने के सिवा उनके लिए दूसरा चारा नहीं था। किन्तु उस घने अंधकार में वह भी हरदम दिखाई नहीं पड़ती थी। युवती एक तरफ दौड़ती हुई चली

जाती तो नवकुमार दूसरी तरफ भटककर चले जाते। युवती ने कहा—"तुम मेरा आँचल पकड़ लो।" नवकुमार उसका आँचल पकड़कर चलने लगे। अब वे धीमे कदमों से चलने लगे। अँधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था, केवल कहीं-कहीं तारों के प्रकाश से किसी वालुका-स्तूप की सफेद चोटी अस्पष्ट-सी दिखाई पड़ती थी, कहीं जुगनुओं से भरे हुए वृक्ष का आकार दिखाई पड़ता था।

कपालकुण्डला पथिक को साथ लिये दुर्गम, गहन जंगल में पहुँच गई, उस समय आधी रात बीत चुकी थी। सामने अँधेरे में ही एक बहुत ऊँचे देवालय का चूड़ शिखर दिखाई पड़ा। उसके पास ही ईंटों की दीवार से घिरा एक मकान भी था। कपालकुण्डला चहारदीवारी के दरवाजे पर पहुँच उसे थपथपाने लगी। बार-बार थपथपाने से एक व्यक्ति अन्दर से बोला—कौन है, कपालकुण्डला हो शायद? कपालकुण्डला ने कहा—हाँ, दरवाजा खोलो।

दरवाजा खुला। जिस व्यक्ति ने दरवाजा खोला, वह उस देवालय के देवता का सेवक या पुजारी था। उसकी उम्र पचास से अधिक हो चुकी थी। कपालकुण्डला ने उसके खल्वाट शिर को हाथ से झुकाकर अपने होठों के पास उसके कान लाकर दो-चार बातों में अपने साथी की सारी अवस्था उसे समझा दी।

पुजारी बड़ी देर तक हथेली पर अपना सिर रखे सोचते रहे। अन्त में बोले—यह बहुत ही कठिन काम है! महापुरुष चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं। जो भी हो, माँ की कृपा से तुम्हारा अमङ्गल न होगा। वह है कहाँ?

कपालकुण्डला ने "आओ" कहकर नवकुमार को बुलाया। नवकुमार आड़ में खड़े थे, पुकारने पर मकान के भीतर आये। पुजारी ने उनसे कहा—आज तुम यहीं छिपे रहो, कल भोर पहर ही तुम्हें मैं मेदिनीपुर के रास्ते पर पहुँचा आऊँगा।

धीरे-धीरे वातचीत के सिलसिले में पुजारी को मालूम हुआ कि अभी तक नवकुमार ने कुछ खाया नहीं है। पुजारी उनके भोजन की तैयारी में लग गये किन्तु नवकुमार ने भोजन करना एकदम अस्वीकार कर दिया, केवल विश्राम के स्थान की प्रार्थना की। पुजारी ने अपने रसोई घर में नवकुमार के लिए बिछौना बिछा दिया। नवकुमार के सो जाने पर कपालकुण्डला ने समुद्र के किनारे लौट जाने का विचार किया। किन्तु पुजारी ने उसकी तरफ स्नेह-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—अभी जाओ मत। थोड़ी देर और रुको, एक निवेदन है।

कपालकुण्डला—क्या ?

पुजारी—जबसे तुमको मैंने देखा है तभी से तुमको माँ कहकर पुकारता हूँ। देवी के चरणों की शपथ लेकर कह सकता हूँ कि माता से अधिक मैं तुमसे स्नेह करता हूँ। मेरी प्रार्थना को ठुकराना मत।

कपा०—आदेश करो।

पुजा०—मेरी प्रार्थना है कि तुम वहाँ फिर मत जाओ।

कपा०—क्यों ?

पुजा०—जाने से तुम सुरक्षित न रहोगी।

कपा०—यह तो जानती हूँ।

पुजा०—तो फिर क्यों पूछती हो ?

कपा०—वहाँ न जाऊँ तो फिर कहाँ जाऊँ ?

पुजा०—इस पथिक के साथ दूसरे देश चली जाओ।

कपालकुण्डला चुप हो रही। पुजारी ने कहा—माँ! तुम क्या सोच रही हो ?

कपा०—जब तुम्हारा शिष्य आया था, तब तुमने ही कहा था कि इस तरह युवक के साथ युवती का जाना अनुचित है। अब जाने को क्यों कहते हैं ?

पुजा०—तब तुम्हारे जीवन के लिए किसी खतरे की आशंका मुझे

नहीं थी, इसके अतिरिक्त जिस सदुपाय के प्रस्तुत होने की सम्भावना थी, अब वह सदुपाय प्रस्तुत है। आओ, माता की अनुमति ले आवें।

यह कहकर पुजारी ने हाथ में दीपक ले, देवालय के दरवाजे पर जाकर दरवाजा खोल दिया। कपालकुण्डला भी उसके साथ-साथ गई। मन्दिर में आदमकद अत्यन्त विकराल काली की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। दोनो ने भक्ति-भाव से प्रणाम किया। पुजारी ने आचमन कर पुष्पपात्र से एक समूचा विल्वपत्र लेकर उसे मन्त्रपूत किया और उसे मूर्ति के चरणों पर रखकर उसकी तरफ ताकते रहे। थोड़ी देर बाद पुजारी ने कपालकुण्डला से कहा—माँ! देखो, देवी ने अर्घ्य ग्रहण कर लिया है, बिल्वपत्र गिरा नहीं है, जिस मनोकामना से मैंने अर्घ्य दिया था, उसमें अवश्य मंगल है। तुम इस पथिक के साथ स्वच्छन्दता से जाओ। किन्तु मैं विषयी लोगों के चरित्र-व्यवहार जानता हूँ, तुम यदि गलग्रह होकर इसके साथ जाओगी, तो यह अपरिचित युवती को अपने साथ लेकर गाँव घर में जाने में लजायेगा; तुमको भी लोग हीन समझेंगे। तुम कहती हो कि यह ब्राह्मण का लड़का है, इसके गले में जनेऊ भी देख रहा हूँ। यह यदि तुमको विवाह करके साथ ले जाय, तो सब मंगल होगा, अन्यथा मैं भी तुमको इसके साथ जाने को न कहूँगा।

"वि-वा-ह!" यह शब्द कपालकुण्डला ने अत्यन्त धीरे-धीरे उच्चारण किया। कहने लगी---विवाह का नाम तो तुम लोगों के मुंह से सुनती रहती हूँ, किन्तु विवाह किसे कहते हैं, यह मैं भली भाँति जानती नहीं। क्या करना होगा?

पुजारी ने जरा हँसकर कहा—विवाह स्त्रियों के एक मात्र धर्म का सोपान है, इसीलिए स्त्री को सहधर्मिणी कहते हैं, जगन्माता भी शिव की विवाहिता हैं।

पुजारी ने समझा कि वह सब कुछ समझा चुके। कपालकुण्डला ने समझा कि वह सब कुछ समझ चुकी। बोली, आपकी जैसी इच्छा। किन्तु उनको छोड़कर जाने को मेरा मन नहीं हो रहा है। उन्होंने मुझे इतने दिन पाला-पोसा जो है।

पुजारी—किसलिए पाला-पोसा है, यह तुम नहीं जानतीं। स्त्रियों का सतीत्व नाश किये बिना तान्त्रिक सिद्ध नहीं होता, यह तुम नहीं जानतीं। मैंने भी तन्त्रादि का अध्ययन किया है। माँ जगदम्बा जगत् की माता हैं। ये सतियों की सतीत्व—सतियों में श्रेष्ठतमा हैं! ये सतीत्वहीन पूजा कदापि ग्रहण नहीं करतीं। इसी कारण मैं महाकापालिक की रुचि के विरुद्ध यह सब काम कर रहा हूँ। तुम भाग जाने से कदापि कृतघ्न न मानी जाओगी। केवल अभी तक सिद्धि का समय उपस्थित न होने के कारण ही तुम बच सकी हो। आज तुमने जो काम कर डाला है, उससे प्राण जाने की भी आशंका हो गई है। इसीलिए कह रहा हूँ, तुम भाग जाओ। भवानी की भी यही आज्ञा है। इस कारण तुम जाओ। अपने यहाँ छिपा रखने का उपाय होता तो मैं तुमको यहीं रखता। किन्तु यह तो संभव नहीं है, तुम जानती हो।

कपा०—अच्छी बात है। विवाह हो ही जाने दें।

यह कहकर दोनो मन्दिर से निकल पड़े। एक कोठरी में कपालकुण्डला को बैठाकर पुजारी नवकुमार के पास जाकर उसके सिरहाने बैठ गये। उन्होंने पूछा—महाशयजी, क्या सो रहे हैं?

नवकुमार की अवस्था नींद आने लायक नहीं थी। वे अपनी दशा पर गहरे सोच में पड़े थे। बोले—जी नहीं।

पुजारी ने फिर कहा—महाशयजी! एक बार परिचय पाने के लिए आया हूँ। आप ब्राह्मण हैं?

नव०—जी हाँ।

पुजारी—कौन ब्राह्मण ?

नव०—राढ़ीय ।

पुजारी--हम भी राढ़ीय ब्राह्मण हैं--उत्कल ब्राह्मण मत समझ लें । वंश में कुलाचार्य हूँ, किन्तु इस समय माता के चरणों की शरण में पड़ा हुआ हूँ । आपका शुभ नाम ?

नव० —नवकुमार शर्मा ।

पुजारी—निवास ?

नव०—सप्तग्राम ।

पुजारी—आप लोगों का गोत्र क्या है ?

नव०—शाण्डिल्य ।

पुजारी—आपने कितने विवाह किये हैं ?

नव०—केवल एक ।

नवकुमार ने सभी बातें खोलकर नहीं बताईं । वास्तव में उनके एक भी स्त्री नहीं थी । उन्होंने रामगोविन्द घोषाल की कन्या पद्मावती से विवाह किया था । विवाह के बाद पद्मावती कुछ दिन अपने मायके पिता के घर में रही, कभी-कभी ससुराल जाती रहती थी । जब उसकी अवस्था तेरह वर्ष की थी, तब उसके पिता सपरिवार जगन्नाथ के दर्शन करने गये थे । उन दिनों पठान लोग, अकबर शाह द्वारा बंगाल से खदेड़े जाने पर, दलबद्ध हो उड़ीसा में डेरा डाले थे । उन लोगों के दमन करने के लिए अकबर शाह बराबर चेष्टा कर रहे थे । जिस समय रामगोविन्द घोषाल उड़ीसा से लौट रहे थे, उस समय मुग़ल-पठानों में युद्ध शुरू हो गया था । आते समय वे रास्ते में पठान-सेना के हाथ में पड़ गये । उन दिनों पठानों में शिष्ट-अशिष्ट का विचार नहीं था । वे लोग निरपराधी पथिकों को रुपये-पैसे के लिए अक्सर लूट लेते थे । रामगोविन्द कुछ उग्र स्वभाव के थे, पठानों से बातों में भिड़ गये । फल

यह हुआ कि वे सपरिवार कैद कर लिये गये। अन्त में स्वधर्म विसर्जन कर सपरिवार मुसलमान बन जाने पर ही उन्हें छुटकारा मिला।

रामगोविन्द घोषाल प्राण बचाकर अपने घर आ तो गये, किन्तु मुसलमान होने के कारण अपने समाज के लोगों द्वारा एकदम वहिष्कृत कर दिये गये। इस समय नवकुमार के पिता जीवित थे। इसलिए जातिभ्रष्ट समधी के साथ जातिभ्रष्टा पुत्रवधू को भी छोड़ देना पड़ा। फिर नवकुमार के साथ उनकी स्त्री की भेंट नहीं हुई।

स्वजनों से तिरस्कृत और समाजच्युत होकर रामगोविन्द घोषाल अधिक दिन स्वदेश में न रह सके। इसी कारण और राजकुल की कृपा से ऊँचा पद पाने की आकांक्षा से वे सपरिवार राजधानी राजमहल में जाकर रहने लगे। धर्म-परिवर्तन करके उन्होंने सपरिवार मुसलमानी नाम धारण किया था। उनके राजमहल ❀ में चले जाने के बाद ससुर या पत्नी की क्या अवस्था हुई, यह जानने का कोई उपाय नवकुमार के पास नहीं था और अब तक कभी वे कुछ भी खबर न पा सके थे। नवकुमार ने विरागवश फिर विवाह नहीं किया। इसीलिए मैं कहता हूँ कि नवकुमार की एक भी स्त्री नहीं थी।

पुजारी को यह सब हाल मालूम नहीं था। उन्होंने सोचा, कुलीन के लड़के की दो स्त्रियाँ रहें तो आपत्ति ही क्या है? प्रकट रूप से बोले—आपसे एक बात पूछने के लिये आया था। इस कन्या ने आपकी प्राणरक्षा की है। इसने परोपकारार्थ अपने प्राण संकट में डाल दिये हैं। जिस महापुरुष के साथ यह रहती है, वे अति भयंकर स्वभाव के हैं। उनके पास लौटकर जाने पर, आपकी जो दशा होने जा रही थी, वही दशा इसकी भी होगी! क्या इसका कोई उपाय आप सोच सकते हैं?

❀ राजमहल एक नगर का नाम था।

नवकुमार उठकर बैठ गये। बोले—मैं भी वही आशंका कर रहा था। आप सब कुछ जानते हैं, इसका उपाय कीजिए। यदि मेरे प्राण देने से कोई उपकार हो जाय तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ। मैं अब इच्छा कर रहा हूँ कि मैं उस नरघातक के पास लौट जाकर आत्म-समर्पण कर दूं। ऐसा करने से इसकी रक्षा हो जायगी।

पुजारी ने हँसकर कहा—तुम पागल हो। इससे क्या फल होगा ? तुम्हारे भी प्राण जायँगे—फिर भी इस कन्या पर महाकापालिक का जो क्रोध है वह शान्त न होगा। इसका एक ही उपाय है।

नव०—वह क्या है ?

पुजारी--आपके साथ इसका पलायन। किन्तु यह बहुत कठिन काम है। मेरे यहाँ रहने से दो-चार दिनों में पकड़ ली जायगी। इस देवालय में महापुरुष बराबर आते-जाते हैं। इस कारण कपालकुण्डला का भाग्य अन्धकारमय देख रहा हूँ।

नवकुमार ने पूछा---मेरे साथ भाग जाना कठिन क्यों है ?

पुजारी--यह किसकी कन्या है, किस कुल में इसका जन्म हुआ है, किसकी पत्नी है---इसका चरित्र कैसा है, यह आप कुछ भी नहीं जानते। आप क्या इसको अपनी संगिनी बनाइएगा ? संगिनी बनाकर ले जाने से भी क्या आप इसे अपने घर में स्थान दीजिएगा ? और यदि आप जगह न देंगे, तो यह अनाथा कहाँ जायगी ?

नवकुमार ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा---जिसने मेरी प्राण-रक्षा की है, उसकी रक्षा के लिए कोई काम मैं असाध्य नहीं मानता। यह मेरे परिवार के लोगों में मिलकर रहेगी।

पुजारी--अच्छी बात है। किन्तु जब आपके आत्मीय स्वजन पूछेंगे यह किसकी स्त्री है, आप क्या उत्तर दीजिएगा ?

नवकुमार ने सोचकर कहा---आप ही इसका परिचय मुझे दें। वही परिचय मैं सबको दूंगा।

पुजारी---अच्छी बात है। किन्तु इस एक पखवारे का रास्ता दो युवती-युवती विना किसी और के साथ कैसे चलें ? लोग देखकर क्या कहेंगे ? क्या सोचेंगे ? आप आत्मीय स्वजनों को कैसे समझावेंगे ? मैंने भी इस कन्या को माँ कहा है, मैं भी किस तरह इसको एक अज्ञात चरित्र युवक के साथ अकेले दूर देश में भेज दूं ?

घटकराज विवाह-सम्बन्ध तय करने में कम निपुण नहीं हैं।

नवकुमार ने कहा—आप साथ चलिए।

पुजारी—मैं साथ चलूं ? तो भवानी की पूजा कौन करेगा ?

नवकुमार ने क्षुब्ध होकर कहा—तो क्या कोई उपाय आप नहीं कर सकते ?

पुजारी—इसके लिए एक ही उपाय है,—लेकिन वह आपकी उदारता पर निर्भर है।

नव०---क्या ? मैं किस बात से इन्कार करता हूँ ? कौन उपाय है, कहिए।

पुजारी—सुनिए। यह है ब्राह्मण-कन्या। इसका हाल मैं पूरा जानता हूँ। यह बचपन में दुष्ट क्रिस्तान डाकुओं द्वारा अपहृत हुई थी और उनकी गाड़ी के टूट जाने पर एक समय उनके द्वारा इसी समुद्र-तट पर छोड़ दी गई थी। यह सब वृत्तान्त बाद को आप इन्हीं के मुंह से विशेष रूप से जान सकेंगे। कापालिक ने इनको पाकर अपनी योग-सिद्धि की इच्छा से इनका प्रतिपालन किया था। शीघ्र वे अपनी आवश्यकता की सिद्धि कर लेते। ये अब तक अविवाहिता हैं। आप इनसे व्याह कीजिए और इनको अपने घर ले जाइए। कोई कुछ न कह सकेगा। मैं शास्त्रविधि से व्याह करा दूंगा।

नवकुमार बिछौने से उठ खड़े हुए। बहुत ही तेजी से इधर-उधर टहलने लगे। कोई उत्तर उन्होंने नहीं दिया। पुजारी ने थोड़ी देर बाद कहा—आप इस समय सो जाइए। कल तड़के मैं आपको जगा

दूँगा। इच्छा हो तो अकेले ही चले जाइएगा। मैं आपको मेदिनीपुर के रास्ते पर छोड़ आऊँगा।

यह कहकर पुजारी चले गये। जाते समय उन्होंने मन ही मन कहा—राढ़ देश की घटकता* कुछ भूल गया हूँ क्या ?

नवाँ परिच्छेद

देव-निकेतन में

"कण्व। कालं रुदितेन, स्थिरा भव, इतः पन्थानमालोकय।"

—शकुन्तला

सवेरे पुजारी नवकुमार के पास आये। उन्होंने देखा, अभी तक नवकुमार सोये नहीं हैं। पूछा—अब क्या करने का निश्चय किया है ?

नवकुमार—आज से कपालकुण्डला मेरी धर्म-पत्नी हुईं। इसके लिए सब छोड़ना पड़े तो वह भी करूँगा। कन्या सम्प्रदान कौन करेंगे ?

घटक-चूड़ामणि का चेहरा खिल उठा। मन ही मन उन्होंने सोचा—इतने दिनों में जगदम्बा की कृपा से शायद मेरी कपालिनी का उद्धार हो गया। प्रकट रूप से बोले—मैं सम्प्रदान करूँगा। पुजारी फिर अपने शयन-कक्ष में चले गये। एक बस्ते में कई अत्यन्त फटे पुराने तालपत्र बँधे रखे थे। उनमें तिथि-नक्षत्रादि का विवरण था। उन पर विशेष रूप से विचार करके आने पर उन्होंने कहा—आज यद्यपि विवाह की लग्न नहीं है, तथापि विवाह में कोई बाधा नहीं है।

---

* 'घटक' बंगाल में विवाह करानेवाले मध्यस्थ को कहते हैं।

मैं गोधूलि लग्न में कन्या सम्प्रदान करूँगा। तुम आज केवल उपवास करना। कुल के आचार-व्यवहार अपने घर जाकर कराना। एक दिन तुम लोगों को छिपाकर रख सकने लायक जगह मेरे पास है। आज यदि वे आ जायँ तो तुम लोगों का पता न पा सकेंगे। फिर विवाह हो जाने पर कल प्रातःकाल अपनी पत्नी के साथ तुम घर चले जाना।

नवकुमार राजी हो गये। इस हालत में, जहाँ तक सम्भव था, वहाँ तक शास्त्रोक्त-विधि से गोधूलि लग्न में नवकुमार के साथ कापालिक-पालिता संन्यासिनी का विवाह सम्पन्न हो गया।

कापालिक का कोई समाचार नहीं मिला। दूसरे दिन भोर पहर तीनों यात्रा की तैयारी करने लगे। पुजारी मेदिनीपुर के रास्ते तक उन लोगों को पहुँचा आयेंगे।

प्रस्थान करने के ठीक पहले कपालकुण्डला कालीमाई को प्रणाम करने गई। भक्ति-भाव से प्रणाम कर पुष्पपात्र से एक विल्वपत्र उठा प्रतिमा के चरणों पर रखकर उसकी तरफ गौर से देखती रही। वह गिर पड़ा।

कपालकुण्डला अत्यन्त भक्तिपरायण थी। विल्वपत्र को प्रतिमा के चरणों से गिरते देख वह बहुत डर गई, और उसने पुजारी से यह बात बतलाई। पुजारी उदास हुए ; बोले—अब कोई उपाय नहीं है! अब पति ही तुम्हारा धर्म है। पति के श्मशान जाने पर तुमको भी साथ-साथ जाना पड़ेगा। इस कारण धैर्य धरो और जाओ।

सभी चुपचाप चलने लगे। बहुत दिन चढ़ने के बाद मेदिनीपुर के रास्ते पर पहुँच गये। तब पुजारी विदा हो लौट गये। कपालकुण्डला रोने लगी। संसार में जो उसका एकमात्र सुहृद् था, वह उससे बिछुड़ रहा था।

पुजारी भी रोने लगे। आँखों के आँसू पोंछकर कपालकुण्डला के कानों में उन्होंने कहा—माँ! तू जानती है, परमेश्वरी की कृपा से तेरी

सन्तान को कोई अर्थाभाव नहीं है। हिजली के छोटे-बड़े सभी उसको पूजा चढ़ाते हैं। तेरे आँचल में मैंने जो कुछ बांध दिया है, उसे तू अपने पति को देकर कहना कि एक पालकी ठीक कर लें। मुझे सदा अपनी सन्तान की तरह याद रखना।

इतना कह पुजारी रोते-रोते लौट गये। कपालकुण्डला भी रोते-रोते चली।

द्वितीय खण्ड

पहला परिच्छेद

राजपथ पर

"There now lean on me : place your foot here"
—Manfred.

किसी लेखक ने कहा है,—"मनुष्य का जीवन काव्य विशेष है।" कपालकुण्डला के जीवन-काव्य का एक सर्ग समाप्त हो गया। बाद में क्या होगा ?

नवकुमार ने मोदिनीपुर पहुँचकर, पुजारी के दिये रुपये से कपाल-कुण्डला के लिए एक दासी, एक पहरेदार और पालकीकहार नियुक्तकर उसे पालकी पर आगे भेज दिया। रुपये की कमी के कारण स्वयं पैदल ही चले। नवकुमार पिछले दिन के परिश्रम से बहुत थके थे। दोपहर के भोजन के बाद कहार उनको बहुत पीछे छोड़कर आगे निकल गये। धीरे-धीरे सन्ध्या हो गई। जाड़े के दिनों के हल्के बादलों से आकाश घिरा था। सन्ध्या भी बीत गई। पृथ्वी अन्धकारमयी हो गई। बूंदा-बांदी भी होने लगी। नवकुमार कपालकुण्डला का साथ पकड़ने के लिए आकुल हो उठे। मन ही मन उन्हें निश्चित विश्वास था कि पहली सराय में उससे भेंट हो जायगी, किन्तु सराय में भी वह नहीं मिली। रात प्रायः चार-छः दण्ड बीत गई। नवकुमार तेज कदम बढ़ाते हुए चलने लगे। अकस्मात् किसी कड़ी चीज पर उनके पैर पड़ गये। पैरों के दबाव से वह चीज खड़-खड़ चट-चट करती टूट गई।

नवकुमार खड़े हो गये। फिर चले, फिर वैसा ही हुआ। फिर उस वस्तु को उन्होंने जमीन पर से उठाया। उन्होंने देखा कि टूटे तख्ते का कोई टुकड़ा-सा है।

आकाश में बादल छाये होने पर भी साधारणत: ऐसा अँधेरा नहीं हो जाता कि खुली जगह में भी किसी स्थूल वस्तु का आकार न दिखाई पड़े। सामने एक कोई बड़ी-सी चीज़ पड़ी हुई थी। नवकुमार देखकर समझ गये कि वह टूटी हुई पालकी है। तुरन्त ही उनके हृदय में कपालकुण्डला के विपत्तिग्रस्त हो जाने की आशंका पैदा हो गई। पालकी की तरफ बढ़ने पर किसी पदार्थ से उनका पैर छू गया। यह स्पर्श कोमल मनुष्य-शरीर के स्पर्श-सा प्रतीत हुआ। बैठकर हाथ से सहलाने पर मालूम हुआ कि मनुष्य-शरीर ही है। स्पर्श अत्यन्त शीतल था। साथ ही किसी तरल पदार्थ का स्पर्श प्रतीत हुआ। नाड़ी पर हाथ रखकर देखा, स्पन्दन नहीं है, प्राण निकल गया है। विशेष ध्यान से देखने पर मालूम हुआ मानो श्वास-प्रश्वास का शब्द सुनाई पड़ रहा है। श्वास चल रही है, तो नाड़ी क्यों नहीं मिलती? क्या कोई रोगी है। नाक के पास हाथ ले जाकर देखा, निश्वास बहना बन्द है। तो यह शब्द कैसा? सम्भवत: कोई जीवित व्यक्ति भी यहाँ है। यह विचार आते ही उन्होंने पुकारा--यहाँ कोई जीवित व्यक्ति है?

मृदु स्वर से उत्तर आया--हूँ।

नवकुमार--तुम कौन हो?

उत्तर मिला--तुम कौन हो? नवकुमार के कानों में यह स्वर किसी स्त्री के गले का-सा मालूम हुआ। घबड़ाकर उन्होंने पूछा--कपालकुण्डला हो क्या?

उस स्त्री ने उत्तर दिया--कपालकुण्डला कौन है, मैं नहीं जानती--मैं एक पथिक हूँ, लुटेरों के हाथ में पड़कर फिलहाल निष्कुण्डला हो रही हूँ।

व्यंग्य सुनकर नवकुमार कुछ प्रसन्न हुए। पूछा---क्या हुआ है ?

स्त्री---डाकुओं ने मेरी पालकी तोड़ डाली है। एक कहार को मार डाला है, दूसरे सभी भाग गये हैं। मेरे शरीर के सभी गहने लेकर डाकू मुझे पालकी से बाँध गये हैं।

नवकुमार ने अँधेरे में टटोलकर देखा कि वास्तव में एक स्त्री पालकी के साथ कपड़े से दृढ़ता से बँधी है। नवकुमार ने जल्दी से उसका बन्धन खोलकर कहा—क्या तुम उठ सकोगी ?

स्त्री ने कहा--मेरे भी लाठी की चोट लगी है, इस कारण पैर में बड़ा दर्द है, किन्तु थोड़ी-सी सहायता मिलने से शायद उठकर चल सकूंगी।

नवकुमार ने अपना हाथ बढ़ा दिया। रमणी उनके सहारे उठ खड़ी हुई। नवकुमार ने पूछा—पैदल चल सकोगी ?

स्त्री ने जवाब न देकर पूछा—आपने अपने पीछे किसी को आते देखा है ?

नवकुमार ने कहा—नहीं।

स्त्री ने फिर पूछा—चट्टी कितनी दूर होगी ?

नवकुमार--कितनी दूर है, मैं बता नहीं सकता--किन्तु मालूम होता है, निकट ही है।

स्त्री--अँधेरे में अकेली मैदान में बैठकर क्या करूँगी ? आपके साथ चट्टी तक जाना ही उचित है। शायद किसी तरह का सहारा पाने से टेक-टेककर चल सकूंगी।

नवकुमार--आपत्तिकाल में संकोच करना मूर्खता है। मेरे कंधे का सहारा लेकर चली चलो।

स्त्री ने मूर्खता का काम नहीं किया। वह नवकुमार के कंधे पर बाँह टेककर चलने लगी।

वास्तव में चट्टी निकट ही थी। उस जमाने में चट्टियों के पास भी

लूटपाट करने में डाकू हिचकते नहीं थे। नवकुमार विना देर किये, साथवाली को लिए वहाँ पहुँच गये।

नवकुमार ने देखा कि उसी चट्टी में कपालकुण्डला ठहरी हुई है। उनके नौकर ने उसके लिए एक कमरा ठीक कर रखा था। नवकुमार ने अपनी संगिनी के लिए उसी कमरे की बगलवाला एक कमरा ठीक करके उसको उसी में रख दिया। उनके आदेशानुसार सराय की मालकिन एक दिया जलाकर ले आई। दीपक के प्रकाश में उस स्त्री को नवकुमार ने देखा कि वह असाधारण सुन्दरी है। रूप-राशि तरंग से उसकी यौवन-शोभा सावन की नदी की तरह छलछला रही थी।

दूसरा परिच्छेद

सराय में

"क्वैसा योषित् प्रकृति चपला।"--उद्धवदूत।

यदि यह स्त्री सर्वथा निर्दोष सुन्दरी होती तो मैं कहता--हे पाठकों! यह आपकी गृहिणियों के समान सुन्दरी है; और हे सुन्दरी पाठकाओं! यह आपके दर्पण में प्रतिविम्बित होनेवाले स्वरूप की तरह रूपवती है। इतने से रूप का वर्णन हो जाता। किन्तु संयोगवश यह सर्वाङ्ग-सुन्दरी नहीं है, इस कारण मेरा चुप रहना ही उचित है।

यह सर्वाङ्ग-सुन्दरी नहीं है, यह कहने का कुछ प्रयोजन है। पहली बात यह कि इसका शरीर मझोले आकार का न होकर कुछ विशेष लम्बा है, दूसरी बात यह कि इसके होंठ कुछ चपटे हैं, तीसरी बात यह कि यह सचमुच गौर वर्ण नहीं है।

शरीर कुछ लम्बा अवश्य है, किन्तु हाथ-पैर वक्ष आदि अंग-

प्रत्यंग सुचारु रूप से गठित हैं, पूर्णरूपेण विकसित हैं। वर्षा ऋतु में वृक्षों पर फैली लताएँ, पत्तियों की अत्यधिक सघनता से, जैसे लहलहाती रहती हैं, इसका शरीर वैसे ही अपनी पूर्णता से थिरक-सा रहा है। इसलिए कुछ लम्बा होते हुए भी, सुन्दर गठन के कारण, शरीर अधिक सुन्दर प्रतीत होता था। जिन्हें हम वास्तव में गौर वर्ण कहते हैं, उनमें से किसी का रंग पूर्णचन्द्र की ज्योत्स्ना-सा होता है, किसी-किसी का कुछ लाली लिए ऊषा की तरह होता है। इस स्त्री का वर्ण इन दोनों से भिन्न था; इसलिए इसे सही तौर पर गौर वर्ण तो नहीं कह सका। हाँ, चित्त को आकर्षित करने की शक्ति उस रंग में अद्वितीय है। यह कुछ श्याम वर्ण की है। "श्यामा माँ" या "श्याम सुन्दर" जैसे श्याम वर्ण के अनेक उदाहरण हैं, इसका वर्ण वैसा नहीं है। उत्तप्त स्वर्ण की जो श्यामता होती है, यह वही ही है। पूर्णचन्द्र की किरणें अथवा हेमाम्बुद-किरीटिनी ऊषा यदि गोरी स्त्रियों की उपमेय मानी जाय, तो वसन्तकालीन नवीन आम्र-पल्लवों की छबि इस श्यामा के वर्ण की समता में कही जा सकती है। पाठकों में से बहुतेरे गोरे रंग की सराहना कर सकते हैं, किन्तु कोई ऐसी श्यामा के मन्त्र से मुग्ध हो जाय तो उसे वर्ण-ज्ञान-शून्य नहीं कहा जा सकता। इस उक्ति से जिनको खीझ होती हो, वे एक बार नव-आम्र-पल्लवों पर विराजते हुए भ्रमर-पुंजों की तरह उस उज्जवल श्याम ललाट पर लटकती हुई अलकों का ध्यान करें; सप्तमी के चन्द्रमा की आकृति वाली, ललाट पर बिखरे केशों को स्पर्श करनेवाली भौहों का ध्यान करें; उस पके आम की तरह रक्तिम-उज्ज्वल कपोलों को याद करें; और उनके मध्य में स्थित अत्यन्त रक्तवर्ण छोटे-छोटे ओठों को याद कर लें; तो यह अपरिचित महिला सुन्दरियों में श्रेण्ठतम सुन्दरी प्रतीत होने लगेगी; आँखें बहुत बड़ी-बड़ी तो नहीं हैं; किन्तु कटीली पल्लव रेखाओं से युक्त और बहुत ही चमकीली हैं। उसका कटाक्ष स्थिर है,

फिर भी मर्मभेदी है। तुम्हारे ऊपर उसकी नजर पड़ने से, तुम उसी क्षण समझ जाओगे कि यह स्त्री तुम्हारे मन के भीतर तक झाँक रही है। देखते-देखते उस मर्मभेदी दृष्टि में भावान्तर उपस्थित हो जाता है, आँखें सुकोमल स्नेहमय रस से द्रवित हो जाती हैं। फिर किसी समय उनमें सुखादेश-जन्य केवल थकान ही भासित होती है, मानो वे नेत्र कामदेव की सुख-शय्या हैं। कभी कामातुर हो मानो मदन-रस से पूर्ण हो नाचने लगती हैं। फिर कभी चंचल वक्र क्रूरकाटाक्ष फेंकती है—मानो बादलों के बीच बिजली चमक उठी हो। उसके मुख की कान्ति में दो तरह की आभा झलकती है, एक तो सर्वत्रगामिनी कुशाग्र बुद्धि का प्राचुर्य दर्शित होता है, दूसरे महान आत्मगौरव झलकता है। इस कारण जब वह अपनी मराल ग्रीवा को जरा टेढ़ी कर खड़ी होती है, सहज ही में प्रतीत होता था कि यह कोई महारानी है।

इस सुन्दरी की अवस्था सत्ताइस वर्ष की है। भादों की भरी हुई नदी की तरह लबालब। भादों की नदी के जल की तरह इसका सौन्दर्य थलथल कर रहा था—उमड़ता जा रहा था। रंग की अपेक्षा, नेत्रों की अपेक्षा, सर्वापेक्षा उस सौन्दर्य का उत्प्लावन अधिक मुग्धकारी था। यौवन के पूर्ण भार से समूचा शरीर सदा कुछ चंचल बना ही रहता. हवा तेज न बहने पर भी शरद्कालीन सरिता जैसे जरा चंचल रहती ही है वैसे ही चंचल, वह चंचलता प्रतिक्षण उसके सौन्दर्य में चारचाँद लगाती रहती है। नवकुमार टकटकी बाँधे उस नई शोभा को निहार रहे थे।

सुन्दरी ने नवकुमार के नेत्रों को एकटक अपनी तरफ ताकते देखकर कहा—आप क्या देख रहे हैं? मेरा रूप?

नवकुमार भले आदमी थे। झेंपकर उन्होंने सिर झुका लिया। नवकुमार को निरुत्तर देख, अपरिचिता ने फिर हँसकर कहा—आपने

क्या कभी किसी स्त्री को नहीं देखा या आप मुझे वहुत ही सुन्दरी समझ रहे हैं ?

साधारण तौर पर यह वात कहने से तिरस्कार की तरह प्रतीत होती, किन्तु रमणी ने जिस मज़ाक के साथ यह वात कही थी, उससे व्यंग्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जान पड़ा। नवकुमार ने सोचा कि यह स्त्री अत्यन्त मुँहफट है। मुखरा की बात का उत्तर क्यों न दें। बोले—मैंने स्त्रियों को बहुत देखा है, किन्तु ऐसी सुन्दरी नहीं देखी।

स्त्री ने गर्व के साथ पूछा—एक भी नहीं ?

नवकुमार के हृदय में कपालकुण्डला का रूप जाग रहा था। उत्तर दिया--एक भी नहीं देखी, ऐसी बात तो नहीं कह सकता।

पत्थर पर लोहे की चोट पड़ी। स्त्री ने उत्तर में कहा--तो भी ठीक है ! वह क्या आपकी पत्नी हैं ?

नव०—क्यों ? पत्नी क्यों सोच रही हो ?

स्त्री--बंगाली लोग अपनी पत्नियों को सबसे सुन्दरी समझते हैं।

नव०--मैं बंगाली हूं। आप भी तो बंगाली की तरह ही बातचीत कर रही हैं। आप किस प्रदेश की हैं ?

युवती ने अपने पहनावे की ओर दृष्टि डालते हुए कहा--यह अभागिन बंगालिन नहीं है। पश्चिम प्रदेश की मुसलमान घराने की है।

नवकुमार ने गौर से देखा, पोशाक पश्चिम प्रदेशीय मुसलमान स्त्री की तरह ही है, किन्तु बंगला तो ठीक बंगालिन की ही तरह बोल रही है। थोड़ी देर बाद सुन्दरी कहने लगी—बातचीत के सिलसिले मेर परिचय आपने ले लिया, अब अपना परिचय देकर मुझे कृतार्थ करें। जिस गृह में वह अद्वितीय सुन्दरी गृहिणी है, वह गृह कहाँ है ?

नवकुमार—मेरा मकान सप्तग्राम में है।

विदेशी स्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया। सहसा सिर झुकाकर बत्ती उकसाकर तेज करने लगी।

क्षण भर बाद मुंह उठाये बिना ही उसने कहा—इस दासी का नाम मोती है। महाशय का नाम क्या मैं नहीं सुन सकती हूं ?

नवकुमार—मेरा नाम है नवकुमार शर्मा।

सहसा दीपक बुझ गया।

तीसरा परिच्छेद

सुन्दरी दर्शन

"—धर देवी मोहन मूरति।
देह आज्ञा, साजाई ओ वरवपु आनि।
नाना आभरण।" —मेघनाद वध

नवकुमार ने मालकिन को पुकारकर दूसरा दिया लाने को कहा। दूसरी बत्ती जलाई जाने के पहले एक दीर्घ निःश्वास का शब्द सुनाई पड़ा। दीपक आने के क्षण-भर बाद भृत्य-वेश में एक मुसलमान वहाँ आया। विदेशिनी ने उसे देखकर कहा—यह क्या, तुम लोगों को इतनी देर क्यों हुई ? और सब लोग कहाँ हैं ?

भृत्य ने कहा—सभी कहार दारू में मतवाले हो रहे थे। उनको सँभाल बटोरकर ले आने में हम लोग पालकी के काफी पीछे रह गये थे। बाद को टूटी पालकी तथा आपको लापता देखकर हम लोग बिलकुल ही बदहवास हो गये थे। कुछ लोग उसी जगह हैं, कोई-कोई दूसरी ओर आपकी तलाश में निकल गये हैं। मैं इस तरफ ढूंढता हुआ आया हूं।

मोती—उन लोगों को यहीं बुला लाओ।

नौ र सलाम करके चला गया। पर विदेशी स्त्री कुछ देर तक कपोल पर हाथ धरे बैठी रही।

नवकुमार ने विदा माँगी। तब मोती स्वप्न से जागे हुए की तरह चौंककर उठ खड़ी हुई और पहले की तरह पूछा—आप कहाँ ठहरिएगा?

नव०—इसके ही बगल वाले कमरे में।

मोती—आपके उस कमरे के पास मैंने एक पालकी रखी देखी है, क्या आपके साथ कोई है?

"मेरी स्त्री।" नवकुमार ने उत्तर दिया।

मोती बीबी को फिर व्यंग्य करने का मौका मिला, बोली—क्या वह अद्वितीय सुन्दरी वे ही हैं?

नव०—देखकर स्वयं निर्णय कीजिएगा।

मोती—उनके दर्शन क्या हो सकेंगे?

नव०—(सोचकर) हर्ज क्या है?

मोती—तो इतनी कृपा कीजिए, उन अद्वितीय सुन्दरी के दर्शन की बहुत ही उत्कण्ठा है। आगरा जाकर सबको बताऊँगी। किन्तु इसी क्षण नहीं—आप जाइए। थोड़ी देर बाद मैं आपको खबर दूंगी।

नवकुमार चले गये। थोड़ी देर बाद बहुत-से नौकर-चाकर दास-दासियाँ और कहार सन्दूक आदि लिए हुए आकर हाजिर हुए। एक पालकी भी साथ थी, उसमें एक दासी बैठी थी। बाद को नवकुमार के पास खबर आई—मोती बीबी ने आपको याद किया है।

नवकुमार फिर मोती बीबी के पास आये। उन्होंने देखा, इस बार रूप और भी बदल गया है। मोती बीबी ने पहली पोशाक उतारकर, स्वर्णमुक्ता आदि की कारीगरी से सुशोभित ज़रीदार वेश-भूषा धारण कर ली है। अलंकारविहीन शरीर को अलंकारों से लाद दिया है। अंग-प्रत्यंग में, केशों में, चोटी में, ललाट पर, नेत्रों के पास, कानों में, गले में, वक्ष पर, दोनो बाहों में सर्वत्र स्वर्णाभूषणों के बीच हीरे

आदि दमक रहे हैं। नवकुमार के नेत्र चंचल हो गये। बहुत-सी स्त्रियाँ सोने के बहुत गहने पहनने पर प्रायः कुछ भद्दी मालूम होने लगती हैं,—बहुत-सी सजाई हुई पुतलियों की तरह दिखाई देने लगती हैं—किन्तु मोती बीबी में वह श्रीहीनता या बनावटी स्थिति दिखाई पड़ने की गुन्जाइश नहीं थी। प्रभूत नक्षत्र-मालाओं से जटित नीले आकाश की तरह—सुन्दर शरीर पर अलंकारों की अधिकता सुसंगत प्रतीत हुई, वरन् उससे और भी सौन्दर्यप्रभा निखर उठी थी। मोती बीबी ने नवकुमार से कहा—महाशय ! चलिए, आपकी पत्नी के पास चलकर परिचय कर लूं। नवकुमार ने पूछा—उनसे मिलने के लिए इतने गहने पहनने की क्या आवश्यकता थी ? मेरी स्त्री के पास तो एक भी गहना नहीं है।

मोती बीबी—यही समझ लें कि मैंने ये गहने दिखाने के लिए पहने हैं। स्त्रियों के पास गहने होने से वे उन्हें बिना दिखाये नहीं मानतीं। अच्छा अब चलिए।

नवकुमार मोती बीबी को साथ लेकर चल दिये। जो दासी पालकी पर सवार होकर आई थी, वह भी साथ चली। इसका नाम था पेशमन।

कपालकुण्डला उस सराय वाले कमरे में गीली जमीन पर अकेली बैठी थी। एक साधारण दिया टिमटिमा रहा था—न बँधे हुए घने केश-पुंज ने शरीर के पिछले भाग को अँधेरा बना रखा था। मोती बीबी से पहले पहल जब आँखें चार हुईं उस समय मोती के होंठों और नेत्रों पर जरा मुस्कान की झलक थी। अच्छी तरह देखने के लिए दीपक उठाकर वह कपालकुण्डला के मुंह के पास ले आईं। गौर से देखते ही हँसी मानो काफूर हो गई। मोती का चेहरा गम्भीर हो गया, टकटकी बांधकर देखती रही। किसी ने कुछ नहीं कहा—मोती मुग्ध थी; कपालकुण्डला विस्मित हो रही थी।

क्षण भर बाद मोती अपने शरीर के गहने उतारने लगी। उन

गहनों को उतारकर मोती एक-एक करके कपालकुण्डला को पहनाने लगी। कपालकुण्डला कुछ भी नहीं बोली। नवकुमार कहने लगे--यह क्या हो रहा है?

मोती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सब गहने पहना चुकने के बाद मोती ने नवकमार से कहा--आपने सत्य ही कहा था--ऐसा फूल तो शाहों के चमन में भी नहीं खिलता। मुझे पछतावा इस बात का है कि राजधानी इस रूपराशि को मैं न दिखा सकी। ये सब गहने इसी शरीर के उपयुक्त हैं, इसी लिए मैंने इन्हें पहना दिया है। आप भी कभी-कभी पहनाकर इस वाचाल परदेसिन की याद कर लीजिएगा।

नवकुमार चौंककर बोले--यह क्या! ये गहने तो बहुत कीमती हैं, इन सबको मैं क्यों और कैसे लूंगा?

मोती ने कहा---ईश्वर की कृपा से मेरे पास और भी बहुत हैं। इन्हें देकर मैं आभूषण-विहीन न हो जाऊँगी। इनको पहनाने से यदि मुझे सुख मिलता है तो आप उसमें क्यों बाधा डालते हैं?

मोती बीवी इतना कहकर, दासी को साथ ले, चली गई। एकांत में पहुंचकर पेशमन ने मोती बीवी से पूछा--बीबो, यह कौन आदमी है?

यवनबाला ने उत्तर दिया--मेरा ख़सम।

चौथा परिच्छेद

पालकी पर

"—खुलिनु सत्वरे,
कङ्कण, वलय, हार, सींथि, कंठमाला,
कुण्डल, नूपुर, काञ्ची।" —मेघनाद वध

गहनों का क्या हुआ, लिख रहा हूं। मोती बीवी ने गहने रखने के

लिए एक रजत-मण्डित हाथी-दांत का डब्बा भेज दिया। लुटेरों ने मोती बीबी का बहुत थोड़ा सामान पाया था—उनके पास जो चीजें थीं, उनके सिवा और कुछ नहीं मिल सका था।

नवकुमार ने दो-चार गहने कपालकुण्डला के शरीर पर रहने दिये और अधिकांश डब्बे में रख दिये। दूसरे दिन प्रातःकाल मोती बीबी वर्दवान की तरफ और नवकुमार पत्नी-सहित सप्तग्राम को रवाना हुए। नवकुमार ने कपालकुण्डला को पालकी में चढ़ा दिया, साथ ही गहनों का डब्बा भी रख दिया। कहार सहज ही में नवकुमार को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गये। कपालकुण्डला पालकी का दरवाजा खोलकर चारो तरफ देखती चली जा रही थी। एक भिखारी उसे देख भीख माँगते-माँगते पालकी के साथ-साथ चलने लगा।

कपालकुण्डला ने कहा—मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, तुमको क्या दूं ?

भिखारी ने कपालकुण्डला के शरीर पर जो दो-चार गहने थे, उनको अंगुली के इशारे से दिखाकर कहा—यह क्या मा ! तुम्हारे शरीर पर इतने हीरा-मोती हैं—फिर भी तुम्हारे पास कुछ नहीं है ?

कपालकुण्डला ने पूछा—गहना पाकर तुम संतुष्ट होगे ?

भिखारी कुछ विस्मित हुआ। भिखारी की तृष्णा अपरिमित थी। क्षण भर रुककर बोला—क्यों नहीं ?

कपालकुण्डला ने निष्कपट हृदय से डब्बा-समेत सभी गहने भिखारी के हाथ में दे दिये। शरीर पर जो आभूषण थे, वे भी उतारकर दे दिये।

भिखारी क्षण भर के लिए विह्वल हो गया। दास-दासियों को कुछ भी मालूम न हो सका। भिखारी का विह्वल भाव थोड़ी देर रहा फिर उसी क्षण इधर-उधर देखकर वह बहुत दम खींचकर भाग गया। कपालकुण्डला सोचने लगी—यह भिखारी भागा क्यों ?

पाँचवाँ परिच्छेद

स्वदेश आगमन

"शव्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्,
कर्णे लोलं कथयितुमभूदानन स्पर्श लोभात् ।"—मेघदूत

नवकुमार कपालकुण्डला को साथ लेकर अपने देश पहुँचे । नवकुमार के पिता न थे, उनकी विधवा माँ और दो बहनें थीं । बड़ी बहन भी विधवा थी, उनके साथ पाठकों का परिचय न होगा । दूसरी बहन श्यामा सुन्दरी सधवा होते हुए भी विधवा समान ही थी, क्योंकि वे कुलीन पति की स्त्री थीं । वे दो-एक बार हमें दर्शन देंगी ।

किसी दूसरी अवस्था में नवकुमार किसी अज्ञात कुल की युवती को व्याह कर घर लाते तो उनके आत्मीय स्वजनों को कहाँ तक खुशी होती, कहना कठिन है । लेकिन इस समय वास्तव में इस सम्बन्ध में उन्हें कोई क्लेश उठाना नहीं पड़ा । सभी उनके लौटने के सम्बन्ध में निराश हो चुके थे । उनके साथ के यात्रियों ने लौटकर प्रचारित कर दिया था कि नवकुमार को बाघ ने मार डाला । पाठक यही समझेंगे कि इन सच बोलनेवालों ने तो अपने विश्वास के ही अनुसार कहा था, किन्तु यह स्वीकार करने से उनकी कल्पनाशक्ति का अपमान होता । लौटे हुए यात्रियों में से बहुतों ने निश्चित रूप से कहा था कि नवकुमार को बाघ के मुंह में पड़ते उन्होंने प्रत्यक्ष देखा था । कभी-कभी बाघ के आकार के बारे में उन लोगों में तर्क-वितर्क भी होते थे । किसी ने कहा—बाघ आठ हाथ का रहा होगा । किसी ने कहा—नहीं, चौदह हाथ का । पूर्व परिचित बूढ़े यात्री ने कहा--जो भी हो, मैं तो बाल-बाल बच गया । बाघ पहले मुझ पर ही झपटा था; मैं भाग निकला । नवकुमार कोई बहुत साहसी तो था नहीं, भय के मारे वह भाग नहीं सका ।

जब ये सब अफवाहें नवकुमार की माँ और दूसरे आत्मीय जनों के कानों में पहुँचीं, तब मकान में ऐसा रोना-धोना मचा कि कई दिन तक वह बन्द नहीं हो सका। एकलौते पुत्र का मृत्यु-समाचार सुन नवकुमार की माँ एकदम मृतप्राय हो गई। ऐसी स्थिति में जब नवकुमार सपत्नीक घर वापस आ गये, तब उनसे यह कौन पूछता कि तुम्हारी यह स्त्री किस जाति की है या किसकी कन्या है ? सभी खुशी में भौचक तथा विह्वल हो रहे थे।

नवकुमार की माँ बड़े समारोह से बहू को यथाविधि घर में लिवा ले गईं।

जब नवकुमार ने देखा कि कपालकुण्डला उनके घर में बड़े आदर के साथ रख ली गई है, तब उनका आनन्दसागर उमड़ पड़ा। निरादर के भय से उन्होंने कपालकुण्डला को पाकर जरा भी प्रसन्नता या प्रेम नहीं व्यक्त किया था—यद्यपि उनका हृदयाकाश कपालकुण्डला की मूर्ति से व्याप्त हो गया था। इसी आशंका से कपालकुण्डला से विवाह करने के प्रस्ताव पर वे एकाएक सहमत नहीं हुए थे।

इसी आशंका से, विवाह हो जाने पर घर आ जाने के समय तक उन्होंने एक बार भी कपालकुण्डला के साथ प्रेमालाप नहीं किया। उत्प्लावित अनुराग-समुद्र में एक भी लहर उन्होंने विक्षिप्त होने नहीं दी। अब वह आशंका दूर हुई। किसी जलस्रोत के मार्ग में उसकी गति में बाधक किसी पत्थर के टुकड़े के हटाये जाने से स्रोत का जैसा तीव्र वेग होता है, नवकुमार का प्रेम-सिंधु वैसे ही वेग से उमड़ चला।

यह प्रेम सदा सम्भाषण में ही व्यक्त नहीं होता था वरन् कपालकुण्डला को देखते ही प्रेमरस पूर्ण नेत्रों से जिस तरह नवकुमार उसकी ओर टकटकी बाँधकर ताकने लगते थे, उसी से प्रकट होता था। अनावश्यक प्रयोजन की कल्पना करके वे कपालकुण्डला के पास पहुँच जाते, उससे प्रकट होता था। जिस तरह अकारण ही कपालकुण्डला

के पास आते-जाते थे, उससे प्रकट होता था। जिस तरह प्रसंग न होने पर भी कपालकुण्डला का प्रसंग उठाने की चेष्टा करते थे, उससे प्रकट होता था; जिस तरह दिन-रात कपालकुण्डला की सुख-स्वच्छन्दता की चिन्ता करते थे, उससे प्रकट होता था; बराबर अन्यमनस्क हो चलने-फिरने में भी प्रकट होता था। उनका स्वभाव तक बदलने लगा। चंचलता की जगह गम्भीरता ने ले ली। उदासी के स्थान पर प्रसन्नता झलकने लगी। नवकुमार का चेहरा सदा ही प्रफुल्लित रहने लगा। हृदय स्नेह का आधार बन गया। अन्य सब लोगों पर भी स्नेह की प्रगाढ़ता उत्पन्न हो गई। जिनसे स्वाभाविक चिढ़ होती थी, उनके प्रति विराग में कमी हो गई। मनुष्यमात्र प्रेम के पात्र हो गये। ऐसा आभास होने लगा मानो केवल सत्-कर्मों के ही लिए इस पृथ्वी की सृष्टि हुई है। सारा संसार सुन्दर प्रतीत होने लगा। प्रेम होता ही ऐसा है। प्रेम कर्कश को मधुर बना देता है, असत् को सत् बनाता है, पापी को पुण्यवान् और अन्धकार को प्रकाशमय बनाता है।

और कपालकुण्डला ? उसका मनोभाव कैसा है। पाठकगण चलो, ज़रा उसे भी देखें !

छठा परिच्छेद

अवरोध

"किमित्यपाश्या भरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम्
वद प्रदोषे स्फुट चन्द्र-तारका
विभावरी यस्यरुणाय कल्पते ।।"

—कुमारसम्भव

सर्वविदित है कि पुराने समय में सप्तग्राम महासमृद्धिशाली एक

नगर था। किसो समय जावा से लेकर रोम तक सब देशों के व्यापारी वाणिज्य के निमित्त इस महानगर में आते थे। किन्तु वंगीय शताब्दी दसवीं-ग्यारहवीं में सप्तग्राम की प्राचीन समृद्धि ढल चुकी थी। इसका प्रधान कारण यह था कि उस नगर की सीमा को प्रक्षालित करती हुई जो नदी बहती थी, वह इस समय छिछली व कम चौड़ी हो गई थी; अतः बड़े-बड़े जहाज अब इस नगर तक नहीं आ पाते थे। इसलिए यहां का वाणिज्य धीरे-धीरे चौपट होने लगा। वाणिज्य नष्ट हो जाने के कारण गौरवशाली नगर का सर्वस्व चला जाता है। सप्तग्राम का भी सर्वस्व चला गया। वङ्गीय ग्यारहवीं सदी में हुगली नवीन सौन्दर्य मे उसकी प्रतियोगिता में आ गया था। वहां पुर्तगालियों ने व्यापार आरम्भ करके सप्तग्राम की धन-लक्ष्मी को खींच लिया था। किन्तु उस समय तक भी सप्तग्राम बिलकुल श्रीहीन नहीं हुआ था। अभी तक वहां फ़ौजदार आदि प्रसिद्ध राजपुरुषों का निवास रहता था। नगर के बहुत से-भाग श्रीहीन और खँडहर होकर ग्राम की शकल में परिणत हो चले थे।

सप्तग्राम के बाहरी मुहल्ले के थोड़े-से घरों में से एक नवकुमार का था। इन दिनों सप्तग्राम की गिरी हुई दशा में वहां बस्ती उजड़-सी गई थी। सभी मुख्य सड़कें लता गुल्मादि से परिपूर्ण थीं। नवकुमार के मकान के पिछवाड़े ही एक विस्तृत घना जंगल था। सामने की ओर कोई एक मील की दूरी पर एक छोटी-सी नहर बहती थी। यह नहर एक छोटे-से मैदान का चक्कर काटती हुई मकान के पीछेवाले जंगल में प्रविष्ट हो गई थी। मकान ईंटों का बना था। देश व काल का विचार करने से उसे बिल्कुल साधारण मकान कोई नहीं कह सकता था। दुमंजिला बना था, यद्यपि बहुत ऊंचा नहीं था। इन दिनों एकमंजिले मकान ही अक्सर उतनी ऊंचाई के दिखाई पड़ते हैं।

इस मकान की छत पर दो नई उम्र की स्त्रियां खड़ी होकर चारो

ओर ताक रही थीं। संध्या हो चली थी। चारो तरफ जो कुछ दिखाई पड़ रहा था, वह नेत्रों को तृप्तिदायक अवश्य था। पास ही एक सघन वन था, उसमें असंख्य पक्षी चहचहा रहे थे। दूसरी तरफ छोटी-सी नहर, चाँदी के तार की तरह, पड़ी हुई थी। दूरी पर महानगर की असंख्य अटारियों की कतारें नववसन्त के पवन-स्पर्श के लिए लोलुप नागरिकों से युक्त शोभायमान थीं। दूसरी तरफ बहुत दूर नावों से अलंकृत भागीरथी के विशाल वक्ष पर सन्ध्या-तिमिर प्रतिक्षण गाढ़तर होता जा रहा था।

वे दोनो युवतियाँ अटारी के ऊपर खड़ी थीं। उनमें एक के शरीर का रंग चन्द्रकिरणों-सी आभायुक्त है, बिखरे हुए केशपुञ्जों से प्रायः आधी छिपी; दूसरी काले रंग की षोड़शी सुमुखी थी। उसका शरीर नाटा और मुँह छोटा था। मुँह का ऊपरी भाग चारो तरफ से घुंघराले केशों की लटों से घिरा था; मानो नीलकमल के पत्तों ने कमल को बीच में घेर रखा हो। दोनो नेत्र बड़े-बड़े, कोमल, शुभ्र, मछली के नेत्रों के समान थे। उसकी छोटी अँगुलियाँ अपनी संगिनी की केश-लहरियों में खेल रही थीं। पाठक समझ गये होंगे कि चन्द्रकिरण-सी शोभा देनेवाली युवती इस आख्यान की नायिका कपालकुण्डला है; उनको बता देना चाहता हूँ कि काले रंगवाली षोड़शी उसकी ननद श्यामासुन्दरी हैं।

श्यामासुन्दरी भौजाई को प्यार से कभी 'बहू", कभी आदर से "बहन", कभी "मृनो" आदि शब्दों से सम्बोधित करती थी। 'कपाल-कुण्डला' नाम कठिन होने के कारण उन्होंने उसका नाम मृण्मयी रख दिया था। इसीलिए यह "मृनो" सम्बोधन चलता था। हम लोग भी अब इनको कभी-कभी मृण्मयी कहकर पुकारेंगे।

श्यामासुन्दरी अपने बचपन की रटी हुई कविता रागिनी से गा रही थी :

कमल कुसुम रानी है मानो रात समय ढकती निज आनन।
प्राणनाथ रवि के दर्शन से खिले कली, मुद अलि का धावन।
वन लतिकाएँ, देखो कैसा मृदु पत्तों को बिखराती हैं।
संयम छोड़ कहीं, चुपके से पेड़ों से जा लिपटाती हैं।
सरिता सरती गिरती पड़ती सागर में जा मिल जाती है।
प्रेम कुमुदनी का देखो तो चाँद निरखते खिल जाती है।
सुमन सेज पर नव विवाहिता, प्रथम रात्रि पग दे चुकती जब।
ऐसे में फिर क्यों विषाद हो, धन्य-धन्य वह जीवन है तब॥

तू क्या कोरी तपस्विनी ही रहेगी?—श्यामा ने पूछा।

मृण्मयी ने उत्तर दिया—क्यों, मैं कौन-सी तपस्या कर रही हूं?

श्यामासुन्दरी ने अपने दोनो हाथों से मृण्मयी की केश-लहरियों को सहलाते हुए कहा—अपने इन बिखरे केश-पुंजों को क्या तू न बाँधेगी?

मृण्मयी ने केवल कुछ हंसकर श्यामासुन्दरी के हाथों से अपने केश झटक लिये।

श्यामासुन्दरी ने फिर कहा—अच्छी बात है, मेरी साध पूरी करो। एक बार तो हमारी गृहस्थ बहू की तरह श्रृंगार करो। कितने दिन योगिनी बनी रहोगी?

मृ०—जब इस ब्राह्मण सन्तान से भेंट नहीं हुई थी, तब तो मैं योगिनी ही थी।

श्या०—अब और न रह सकोगी।

मृ०—क्यों न रह सकूंगी?

श्या०—क्यों? अच्छा देखो। तुम्हारा योग तोड़े देती हूं! पारस पत्थर किसे कहते हैं, जानती हो?

मृण्मयी ने कहा—नहीं।

श्या०—पारस पत्थर के स्पर्श-मात्र से लोहा भी सोना बन जाता है।

मृ०—इससे क्या मतलब?

श्या०—स्त्रियों का भी एक पारस पत्थर होता है।

मृ०—वह क्या है ?

श्या०—पुरुष। पुरुष की हवा लगने से संन्यासिनी भी गृहिणी बन जाती है। तुमने उस पत्थर को छू लिया है। बताऊँ सुनो—

केश सवारूँगी हे सजनी, सुन्दर वसन पिन्हाऊँगी।
तेरी वेणी में झूलन को, फूल लाल लगवाऊँगी॥
सेंदुर-रेखा शुभ सुहाग की, कटि किंकिनि मोहनकारी।
झुमकों की लटकन कानों में लगती है कितनी प्यारी॥
चन्दन कुंकुम इतर पान से लाल करूँ मुख, सुख पाऊँ।
छवि निहार सजनी की ऐसी, वार-बार बलि-बलि जाऊँ।
नन्हें सुन्दर शिशु से जब मैं भर दूंगी· तेरी गोदी।
तब तो नाचेगी भाभी या फिर भी मुँह लटकायेगी॥

मृण्मयी ने कहा—अच्छा अब मैं समझी। पारस पत्थर मानो मैं छू चुकी हूँ, सोना बन गई हूँ। बालों को बाँध, कपड़े पहन लिये, जूरे में फूल भी सजा लिये, कमर में करधनी पहन ली, कानों में झूमड़ झूलने लगे, चन्दन, कुंकुम, पान-सुपारी खाकर, सोने की पुतली बन गई। मान लो, सब काम पूरे हो गये। यह सब होने पर भी क्या सुख है ?

श्या०—बताओ तो भला फूल को खिलने में क्या सुख है ?

मृ०—दूसरे लोगों को उसे देखने से सुख मिलता है, फूल को क्या सुख है ?

श्यामा सुन्दरी की मुखकान्ति गम्भीर हो गई, प्रभात-समीर से स्पर्श पाये नील कमलवत् विस्फारित नेत्र जरा चमक उठे। वह बोली—फूल को क्या सुख है ? यह तो मैं बता नहीं सकती। कभी फूल बन कर मैं खिली नहीं। किन्तु यदि तुम्हारे समान कली मैं होती तो खिल-कर सुखी होती।

श्यामा किसी कुलीन की पत्नी है।

हम भी इस अवसर पर पाठकों को बता देना चाहते हैं कि फूल को खिलने में ही सुख है। पुष्प-रस, पुष्प-गंध दूसरों को वितरित करना ही उसका सुख है। आदान-प्रदान ही संसार के सुखों के मूल हैं, अन्य कुछ नहीं। वन में रहकर मृण्मयी कभी यह बात हृदयङ्गम नहीं कर सकी, इसलिए बात का कोई उत्तर वह दे नहीं सकी।

श्यामासुन्दरी ने उसे चुप देखकर कहा—अच्छा, यदि मेरा कहना ठीक नहीं है तो सुनूं, तुमको किसमे सुख है ?

मृण्मयी ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा—मैं कह नहीं सकती, शायद समुद्र के किनारे उस वन में घूमते रहने में मुझे सुख हो।

श्यामासुन्दरी कुछ विस्मित हो गई। उन लोगों के आदर व स्नेह से मृण्मयी को सुख नहीं मिला, इस बात से कुछ क्षुब्ध हो गई। कुछ रुष्ट भी हुई। बोली—अब वहाँ लौट जाने का कोई उपाय ?

मृ०—उपाय कुछ नहीं है।

श्या०—तो अब तुम क्या करोगी ?

मृ०—पुजारी जी कहा करते थे—यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि !

श्यामासुन्दरी ने, मुँह पर कपड़ा लगा हँसते हुए, कहा—जैसी आज्ञा, पण्डितजी। तो अब क्या होगा ?

मृण्मयी ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—जो विधाता करावेंगे, वही करूँगी। जो भाग्य में लिखा है, वही होगा।

श्यामा—क्यों, भाग्य में और क्या है ? भाग्य में सुख है। तुम इस तरह लम्बी साँस क्यों भर रही हो ?

मृण्मयी—सुनो, जिस दिन पति के साथ मैंने यात्रा की थी, उस दिन यात्रा के समय मैं भवानी के चरणों पर बिल्वपत्र अर्पित करने गई थी। मा के चरणों पर बिल्वपत्र चढ़ाये बिना मैं कोई काम नहीं करती थी ? यदि उस कर्म का फल शुभ होनेवाला होता, तो मा

बिल्वपत्र ग्रहण कर लेती थीं, यदि कोई अमंगल होने की आशंका होती तो वह बिल्वपत्र नीचे गिर जाता। अपरिचित व्यक्ति के साथ अज्ञात देश में आने में चित्त सशङ्कित होने लगा था। भला-बुरा जानने के लिए मा के पास गई। मा ने बिल्वपत्र स्वीकार नहीं किया। इस कारण, भाग्य में क्या है, मैं नहीं जानती।

मृण्मयी चुप हो गई। श्यामासुन्दरी अमंगल की कल्पना से सिहर उठी।

तृतीय खण्ड

पहला परिच्छेद

पूर्व कथा

"कष्टोऽयं खलुभृत्यभावः" —रत्नावली।

जब नवकुमार कपालकुण्डला को साथ ले चट्टी से रवाना हुए, उसी समय मोती बीबी दूसरे रास्ते से बर्दवान की तरफ चल पड़ीं। जब तक मोती बीबी रास्ता पूरा कर रही हैं तब तक हम उसकी पूर्व जीवन-कथा सुनाते हैं। मोती का चरित्र अत्यन्त कलुषित था, साथ ही अनेक सद्‌गुणों से भी सुशोभित था। ऐसे कुतूहल भरे चरित्र के विस्तृत वर्णन से पाठक अन्सतुष्ट न होंगे।

जब उसके पिता ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, तब उसका हिन्दू नाम बदलकर लुत्फउन्निसा हो गया। मोती बीबी उनका नाम कभी नहीं रहा। केवल कभी-कभी छद्मवेश में देश-विदेशों में भ्रमण करते समय वह उक्त नाम धारण कर लेती थीं। इसके पिता ढाका में सरकारी काम में नियुक्त हुए। किन्तु वहाँ उनके देश के अनेक लोगों का निवास था। अपने समाज से समाजच्युत होकर उनके बीच में रहना सबको सुहाता न था। इसलिए कुछ दिनों में वे सूबेदार के यहाँ से प्रतिष्ठा प्राप्त कर, अनेकानेक उमराओं से तमाम प्रशंसापत्र संग्रह करके सपरिवार आगरा चले गये। अकबर बादशाह से किसी के भी गुण छिपे नहीं रहते थे। शीघ्र ही उन्होंने इनके गुणों का आदर किया। लुत्फउन्निसा के पिता शीघ्र ही उच्च पद पर नियुक्त होकर आगरे के प्रधान उमराओं में गिने जाने लगे। इधर लुत्फउन्निसा धीरे-धीरे सयानी

होने लगी। आगरे में आकर उसने फ़ारसी, संस्कृत, नृत्य, गीत, वाद्य आदि में दक्षता प्राप्त की। राजधानी की असंख्य रूपवती, गुणवती ललनाओं में वह प्रमुख गिनी जाने लगी। दुर्भाग्यवश विद्याध्ययन उसका जितना अधिक था, नीति के सम्बन्ध में वह उतनी ही अपटु थी। लुत्फउन्निसा की उम्र वयस्क हो जाने पर प्रतीत होने लगा कि उसकी मनोवृत्तियाँ दुर्दम वेगवती हैं। इन्द्रियनिग्रह की जरा भी शक्ति उसमें नहीं है, रुचि भी नहीं है। भले-बुरे में समान दृष्टि है। यह काम अच्छा है, या बुरा है, ऐसा विचार कर वह किसी काम में हाथ नहीं डालती थी। उसको जो रुचता वही करती थी। जब अच्छे कामों में अन्तःकरण सुखी होता, तब अच्छे काम करती; असत् कामों के लिए जब जी मचलता तब असत् कार्य करने में भी हिचकती न थी। पूर्ण यौवनावस्था की सहज मनोवृत्तियाँ अत्यन्त वेगवती होने से जो दोष पैदा होते हैं, वे सभी लुत्फउन्निसा में आ गये उसके पहले के पति मौजूद थे। उमराओं में से कोई उससे विवाह करने को राजी नहीं था। उसे भी विवाह के प्रति बहुत अनुराग नहीं था। मन ही मन सोचा, फूल-फूल पर सर्वत्र विहरण करनेवाली भ्रमरी के पंख क्यों कटवा दूं? आखिरकार समाज में पहले कानाफूंसी चलती रही, अन्त में कालिमा-मय कलंक चारो ओर फैल गया। उसके पिता ने आरीं आकर अपने मकान से उसे निकाल दिया।

लुत्फउन्निसा छिपे तौर से जिन लोगों को अपनी कृपा से उपकृत करती थी, उनमें युवराज सलीम भी एक थे। एक उमरा के कुल को कलंकित करने से कहीं निष्पक्ष पिता का कोपभाजन न बनना पड़े, इस आशंका से सलीम अब तक लुत्फउन्निसा को अपने अन्तःपुर में खुलासा रखने में झिझकते थे। अब उनको भी मौका मिल गया। राज-पूत सेनानायक महाराज मानसिंह की बहन युवराज की प्रधान रानी थी। युवराज ने लुत्फउन्निसा को उनकी प्रधान सहचरी नियुक्त कर

दिया। प्रत्यक्ष में लुत्फउन्निसा बेगम की सखी थीं, परोक्ष रूप से वह युवराज की अनुग्रहपात्री बन गईं।

लुत्फउन्निसा की तरह चतुर स्त्री थोड़े ही दिनों में राजकुमार के हृदय पर अधिकार जमाने में समर्थ हो सकती है, सहज ही, समझने योग्य बात है। सलीम के चित्त में उसकी छाप ऐसी निर्विवाद हो जम गई कि समय आने पर वह उनकी पटरानी बनने का अवश्यंभावी स्वप्न हर समय देखने लगी। केवल लुत्फउन्निसा को ही यह दृढ़ निश्चय हो गया हो, ऐसी बात नहीं। राजभवन में रहनेवाले सभी लोग यह बात निश्चित-सी समझने लगे थे। ऐसे सुखद स्वप्न में लुत्फउन्निसा जीवन व्यतीत कर रही थी कि एकाएक उसकी नींद टूट गई। अकबर बादशाह के खज़ाञ्ची (एतमादउद्दौला) ख्वाजा अब्बास की पुत्री मेहरउन्निसा मुसलमान कुल की लड़कियों में सबसे श्रेष्ठ सुन्दरी थी। एक दिन ख्वाजा साहब ने राजकुमार सलीम और दूसरे प्रधान व्यक्तियों को अपने घर दावत देकर बुलाया। उसी दिन मेहरउन्निसा के साथ सलीम की मुलाकात हुई और सलीम ने अपना हृदय मेहरउन्निसा के पास उसी दिन छोड़ दिया। उसके बाद जो घटनाएँ घटी थीं, उनसे सभी इतिहास पढ़नेवाले परिचित हैं। शेरअफगन नामक एक महापराक्रमी उमरा के साथ खजांची की कन्या का विवाह-सम्बन्ध पहले ही निश्चित किया जा चुका था। सलीम ने मोहान्ध हो उस सम्बन्ध को तोड़वा देने के लिए अपने पिता से भी आग्रह किया किन्तु निष्पक्ष पिता सम्राट अकबर ने उसे ही तिरस्कृत किया। इस कारण सलीम को उस समय रुक जाना पड़ा। वे रुक तो गये, किन्तु निराश नहीं हुए। शेरअफगन के साथ मेहरउन्निसा का विवाह हो गया। किन्तु सलीम की चित्तवृत्तियों से लुत्फउन्निसा पूर्णतः परिचित थी—वह निश्चित रूप से समझती थी कि शेरअफगन के अतुल पराक्रमी होते हुए भी उनका निस्तार कठिन है। अकबर बादशाह की मृत्यु होते ही उनका भी अन्त अवश्यम्भावी है—

मेहरउन्निसा सलीम की प्रधान बेगम बन जायगी। लुत्फुउन्निसा ने पटरानी बनने की आशा छोड़ दी।

मुगलवंश-गौरव सम्राट् अकबर की परमायु पूरी हो चली। जिस प्रचण्ड सूर्य के आलोक से तुर्की से लेकर ब्रह्मपुत्र तक आलोकित हो गया था, वह सूर्य अब ढल चला। उस समय लुत्फउन्निसा ने अपनी प्रधानता की रक्षा के निमित्त एक दुस्साहस-पूर्ण संकल्प कर डाला।

राजपूत राजा मानसिंह की बहन सलीम की प्रधान बेगम थीं। खुसरू उनके पुत्र थे। एक दिन अकबर बादशाह के पीड़ित शरीर के सम्बन्ध में लुत्फउन्निसा के साथ उसकी बातचीत चल रही थी। अब राजपूत-कन्या बादशाह की सम्राज्ञी बनेगी, इस बात का प्रसङ्ग उठाकर लुत्फउन्निसा उनका अभिनन्दन कर रही थी। उत्तर में खुसरू की मा बोली—निस्सन्देह ! बादशाह की स्त्री होना बहुत बड़ा सौभाग्य है, किन्तु जो बादशाहों की मा होती हैं, वे ही श्रेष्ठतमा हैं।

यह उत्तर सुनते ही एक अपूर्व चिन्तित दुरभिसन्धि लुत्फउन्निसा के हृदय में नाच उठी। उसने उत्तर दिया—तो ऐसा ही क्यों न होने दिया जाय ? इसमें तो आपकी इच्छा भर की देर है। बेगम ने पूछा—यह कैसे ? चतुर लुत्फउन्निसा ने उकसाया—आप युवराज खुसरू को सिंहासन पर बैठाइए।

बेगम ने कोई उत्तर नहीं दिया। उस दिन यह प्रसङ्ग आगे नहीं बढ़ाया गया। किन्तु कोई भी इस बात को भूला नहीं। पति के बदले पुत्र सिंहासन पर बैठ जाय, इसमें बेगम की असम्मति नहीं थी। मेहरउन्निसा पर सलीम का अनुराग जिस तरह लुत्फउन्निसा के हृदय का शूल बना था, बेगम के लिए भी वह उतना ही कष्टप्रद था। राजा मानसिंह की बहन को एक साधारण तुर्ककन्या की आज्ञाकारिणी बनना पड़ेगा, यह स्थिति कैसे हो सकती है ? इस सकल्प में उद्योग-

शील होने में लुत्फउन्निसा का भी गूढ़ तात्पर्य था। दूसरे दिन फिर यह प्रसङ्ग उठा। दोनो का मत निश्चित हो गया।

सलीम के बजाय खुसरू को अकबर के सिंहासन पर बिठाना असम्भव होने का कोई कारण नहीं था। लुत्फउन्निसा ने बेगम को यह बात अच्छी तरह समझा दी। उसने बतलाया—मुगलों का साम्राज्य राजपूतों के बाहुबल से स्थापित हुआ है। उसी राजपूत जाति के शिरोमणि हैं राजा मानसिंह, वे हैं खुसरू के मामा और मुसलमानों के प्रधान खाँ आजिम हैं प्रधान मंत्री, जो खुसरू के ससुर हैं। इन दोनो के उद्यत हो जाने पर कौन इनका मददगार न होगा? आखिर और कौन है जिसके बल से युवराज सिंहासन प्राप्त कर सकेंगे? राजा मानसिंह को इस कार्य में आमादा करने का भार आप पर है। खाँ आजिम और दूसरे मुसलमान उमराओं को इसमें लगाने की जिम्मेदारी मेरी है। आपके आशीर्वाद से मैं इसमें सफल हो जाऊँगी, किन्तु एक आशंका. यह है कि सिंहासनारूढ़ हो जाने पर पीछे खुसरू कहीं इस दुराचारिणी को महल - निकाल बाहर न कर दें।

बेगम अपनी संगिनी का अभिप्राय समझ गईं। हँसकर बोलीं—तुम आगरे में जिस उमरा की गृहिणी बनना चाहोगी, आजादी से उससे ब्याह करना। उन्हें पाँच हजारी मनसबदार बना दिया जायगा।

लुत्फउन्निसा सन्तुष्ट हुई। उसका लक्ष्य पूरा हो गया। यदि राजपुरी में ही साधारण रखेली बनकर रहना पड़ा, तो प्रति फूल पर विहार करनेवाली इस मधुकरी के पंख काट देने से उसे भला क्या सुख मिला? यदि स्वतंत्रता से ही हाथ धोना पड़ा तो बाल्य-सखी मेहरउन्निसा की दासता में क्या सुख मिलेगा? इसकी अपेक्षा किसी राजपुरुष की सर्वाधिकार-प्राप्त संगिनी बन जाना कहीं गौरव का विषय है।

केवल इसी लोभ से लुत्फउन्निसा इस काम में प्रवृत्त नहीं हुई थी।

सलीम जो उसकी उपेक्षा कर मेहरउन्निसा के लिए इतने आतुर हैं, उनसे इसके प्रतिशोध की भावना भी इसका एक मुख्य कारण था।

खाँ आज़िम प्रभृति आगरा-दिल्ली के उमरा लोग लुत्फउन्निसा के वश में बहुत थे। खाँ आज़िम अपने दामाद की भलाई में सहायक हों, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। वे और दूसरे उमरा लोग सहमत हो गये। खाँ आज़िम ने लुत्फउन्निसा से कहा—मान लो, यदि किसी त्रुटि के कारण हम सफल नहीं हुए तो फिर मेरी और तुम्हारी ख़ैर नहीं। इस कारण प्राण-रक्षा का कोई उपाय ढूंढ़ रखना अच्छा होगा।

लुत्फउन्निसा ने पूछा—आपका क्या परामर्श है?

खाँ आज़िम बोले—उड़ीसा के अतिरिक्त दूसरा ठिकाना नहीं है। केवल उसी प्रान्त में मुगलों का शासन उतना मजबूत नहीं है, उड़ीसा की सेना हमारे हाथ में रहना आवश्यक है। तुम्हारे भाई उड़ीसा के मनसबदार हैं। मैं कल प्रचार करूँगा कि वे युद्ध में घायल हो गये हैं। तुम उनको देखने के बहाने कल ही उड़ीसा को रवाना हो जाओ। वहाँ अपना कर्तव्य पूरा करके शीघ्र लौट आना।

लुत्फउन्निसा ने इस परामर्श को मान लिया। वह उड़ीसा जाकर जब वापस लौट रही थी, तब पाठकों की उससे भेंट हुई।

दूसरा परिच्छेद

दूसरी राह में

"जे माटीते पड़े लोके उठे ताइ धरे।
वारेक निराश हये के कोथाय मरे॥
तूफाने पतित किन्तु छाड़िब न हाल
आजि के विफल हलो, ह'ते पारे काल।"

—नवीन तपस्विनी

जिस दिन नवकुमार को बिदा कर मोती बीवी या लुत्फउन्निसा बर्दवान की तरफ रवाना हुई, उस दिन वह बर्दवान तक पहुँच न सकी। आगे दूसरी चट्टी में ठहर गई। सन्ध्या के समय पेशमन के साथ बैठ कर उससे उन्हीं के सम्बन्ध में बातचीत हो रही थी। मोती ने एकाएक पेशमन से पूछा—पेशमन, मेरे पति को तूने देखा ? कैसा है ?

पेशमन कुछ पशोपेश में पड़ गई। बोली—कैसा क्या मतलब ?

मोती ने पूछा—वह सुन्दर है या नहीं ?

नवकुमार के ऊपर पेशमन बहुत खीझ गई थी। जो गहने मोती ने कपालकुण्डला को दे दिये थे उनपर पेशमन की लार बहुत दिन से टपक रही थी। मन ही मन उसे आशा थी कि एक दिन उन्हें मोती बीवी से माँग लेगी। आज वह आशा समाप्त हो गई। इसलिए कपालकुण्डला और उसके पति दोनो पर वह मन ही मन रुष्ट थी। अतः मालकिन के प्रश्न के उत्तर में उसने रूखेपन से उत्तर दिया—दरिद्र ब्राह्मण, सुन्दर या कुरूप में फर्क क्या है ?

संगिनी का मनोभाव समझ मोती ने हँसते हुए कहा—यही दरिद्र ब्राह्मण यदि उमरा बन जाय, तो वह सुन्दर पुरुष हो जायगा या नहीं ?

पेशमन—यह कैसी बात है ?

मोती—क्यों, तुम क्या नहीं जानतीं कि बेगम ने खुसरू के बादशाह बन जाने पर मेरे पति को उमरा बना देने का वचन दिया है ?

पे०—यह तो मैं जानती हूँ, किन्तु तुम्हारे ये पति उमरा क्यों बनेंगे ?

मोती—तो और कौन है मेरा पति ?

पे०—जो नये होंगे।

मोती ने जरा मुसकराकर कहा—मेरी तरह सती स्त्री के दो पति रहें, यह तो बहुत ही अनुचित है।

—ऐं, वह कौन जा रहा है ?

ज़िसको देखकर मोती ने कहा था—"वह कौन जा रहा है ?"—पेशमन उसे पहचान गई । वह आगरा-निवासी खाँ आज़िम का कर्मचारी था । दोनो व्यस्त हो गई । पेशमन ने उसे पुकारा । उसने आकर लुत्फ़उन्निसा को सलाम कर उसके हाथ में एक चिट्ठी दे दी । कहा—चिट्ठी लेकर मैं आपके पास उड़ीसा जा रहा था । यह चिट्ठी बहुत जरूरी है ।

चिट्ठी पढ़कर मोती बीबी की सारी आशाएँ चूर हो गई । पत्र का आशय यह था—

हम लोगों की चेष्टा विफल हो गई । मृत्यु के समय भी अकबर शाह ने अपने वुद्धिवल से हमें परास्त कर दिया है । वे परलोक सिधार चुके हैं । उनके हुक्म से कुमार सलीम बादशाह बन गये हैं । तुम खुसरू के लिए उलझन में न पड़ो । बदले में कोई तुम्हारे साथ शत्रुता का व्यवहार न करे; कुछ ऐसा उद्योग करने के लिए तुम तुरन्त आगरा लौट आओ ।

अकबर शाह ने जिस तरह इस षड़यन्त्र को विफल कर दिया था, उसका वर्णन इतिहास में है । यहाँ उस विस्तार की आवश्यकता नहीं है ।

पुरस्कार दे, दूत को बिदा कर, मोती ने पेशमन को चिट्ठी दिखलाई । पेशमन ने पूछा—अब क्या उपाय हो ?

मोती—अब कोई रास्ता नहीं है ।

पेश०—(थोड़ी देर तक सोचकर) अच्छी बात है, नुकसान ही क्या है ? तुम जैसी थीं, वैसी ही रहोगी । मुग़ल बादशाह के महल की पुरनारियाँ भी दूसरे राज्यों की पटरानियों से बड़ी हैं ।

मोती—(मुसकराकर) यह अब नहीं हो सकता । अब मैं उस राजमहल में न रह सकूंगी । शीघ्र ही मेहरउन्निसा के साथ जहांगीर

का विवाह होगा। मेहरउन्निसा को मैं किशोरावस्था से जानती हूं। एक बार महल में पहुँच जाने पर असल बादशाह वही हो जायगी। जहांगीर केवल नाम के लिए बादशाह रहेंगे। मैं उनके सिंहासन पर बैठने के मार्ग में बाधक हुई थी, यह बात उनसे छिपी न रहेगी। तब मेरी क्या गति होगी ?

पेशमन रुआसी होकर बोली—फिर क्या होगा ?

मोती फिर कहने लगी—मुझे केवल एक भरोसा है। मेहरउन्निसा का मनोभाव जहांगीर के प्रति कैसा है ? जैसी वह दृढ़ स्वभाव की है, उससे यदि वह जहांगीर पर अनुरक्त न होकर अपने पति के प्रति यथार्थ प्रेम रखती हो तो उस स्थिति में जहांगीर सौ शेरअफगनों की हत्या करके भी मेहरउन्निसा को न पा सकेंगे और यदि मेहरउन्निसा जहांगीर को सच्चे दिल से पाना चाहती होगी तो कोई आशा नहीं है।

पे०—मेहरउन्निसा का मन कैसे जानोगी ?

मोती ने हँसकर कहा—लुत्फउन्निसा के लिए नामुमकिन क्या है ? मेहरउन्निसा मेरी बाल्य-सखी है। कल ही वर्द्धवान जाकर उसके यहाँ दो दिन ठहरूंगी।

पे०—यदि मेहरउन्निसा सलीम बादशाह की अनुरागिनी न हो, तो उस हालत में तुम क्या करोगी ?

मोती—पिताजी कहा करते हैं—क्षेत्रे कर्म विधीयते।

दोनो कुछ देर चुप रहीं कि मुसकराते-मुसकराते मोती के ओंठ सिकुड़ने लगे। पेशमन ने पूछा—क्यों हँस रही हो ?

मोती ने कहा—एक नई बात सूझ रही है।

पे०—नई बात क्या ?

मोती ने पेशमन को नहीं बताया। हम भी पाठकों को न बता सकेंगे। पीछे सब मालूम हो जायगा।

तीसरा परिच्छेद

"श्यामादन्यो नहि नहि नहि प्राणनाथो ममास्ति ।"

—उद्धवदूत

शेरअफ़ग़न इस समय बंगाल के सूबेदार के अधीन बर्दवान में एक उच्च पद पर कार्य कर रहे थे ।

मोती बीबी बर्दवान जाकर शेरअफ़ग़न के मकान में पहुँची । शेर अफ़ग़न और उसकी पत्नी ने उसको अत्यन्त आदर-सत्कार के साथ अपने यहाँ ठहराया । जिस समय शेरअफ़ग़न अपनी स्त्री के साथ आगरे में रहते थे, उस समय मोती उन लोगों से विशेष परिचित थी । मेहरउन्निसा से मोती बीबी का विशेष स्नेह था । बाद को दोनो ही दिल्ली का साम्राज्य पाने के लिए परस्पर प्रतिद्वन्द्विनी बन गई थीं । आज मिलन होने पर मेहरउन्निसा मन में सोचने लगी—भारतवर्ष का साम्राज्य विधाता ने जाने किसके भाग्य में लिखा है ? विधाता के अतिरिक्त किसी अन्य को यदि इसकी जानकारी होगी तो सलीम के अलावा वह है लुत्फउन्निसा । देखूं, लुत्फउन्निसा क्या कुछ खुलेगी ?

मेहरउन्निसा के रूप व सौन्दर्य की उन दिनों भारतवर्ष में दूर-दूर तक ख्याति फैली थी । वास्तव में मेहरउन्निसा-जैसी रूपवती संसार में बहुत ही कम जन्मी थीं । इतिहास में सौन्दर्य के लिए ख्याति प्राप्त करनेवाली स्त्रियों में उसकी प्रमुखता को सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं । अनेक कलाओं में, सर्वतोमुखी प्रतिभा में, उसके समकक्ष बहुत कम लोग थे । नृत्यगीत में मेहरउन्निसा अद्वितीय थी । काव्यरचना या चित्रकारी में वह सबका मन मोहित कर लेती थी । उसकी सरस बातें, सरल व्यवहार, उसके सौन्दर्य से भी अधिक मनमोहक थे । मोती भी इन गुणों में घटकर न थी । आज ये दोनो कुतूहलपूर्ण स्त्रियाँ एक-दूसरे का मन जानने के लिये उत्कण्ठित हैं ।

मेहरउन्निसा अपने खास कमरे में बैठी एक चित्र खींच रही थी। मोती मेहरउन्निसा के पीछे सटी हुई बैठी उसकी कला को निहार रही थी और पान चबा रही थी। मेहरउन्निसा ने पूछा—चित्र कैसा बन रहा है ? मोती बीबी ने उत्तर दिया—तुम्हारे चित्र जैसे बनते हैं, वैसा ही बन रहा है। और कोई तुम्हारी तरह चित्रांकन में निपुण नहीं है, यही दुःख है।

मेहर०—यदि यह बात सच भी हो तो इसमें दुःख की बात क्या है ?

मोती—तुम्हारी तरह चित्रकला में निपुण कोई अन्य रहती तो वह तुम्हारे सुन्दर मुखड़े का आदर्श भी पेश कर सकती थी।

मेहर०—कब्र में रहेगा इस मुख का आदर्श।—मेहरउन्निसा ने यह बात कुछ गंभीर स्वर में कही।

मो०—बहन ! आज मन इतना उचाट क्यों है ?

मेहर०—मन उचाट तो नहीं है, किन्तु कल सवेरे तुम मुझे छोड़कर चली जाओगी, इसे मैं कैसे भूल जाऊँ ? इसी से मेरा मन कुछ खिन्न है। और दो दिन ठहरकर तुम मुझे कृतार्थ न करोगी ?

मो०—सुख की साध किसे नहीं रहती ? यदि मेरे वश में होता तो मैं क्यों जाती ? किन्तु दूसरों के अधीन जो हूँ, कैसे रह सकती हूँ ?

मेहर०—मेरे ऊपर तुम्हारा प्रेम तो अब है नहीं, नहीं तो तुम किसी तरह रह भी जातीं। यहाँ तक आ गई हो, तो दो दिन रह क्यों नहीं सकतीं।

मो०—मैंने तो सभी बातें बता दी हैं। मेरे सगे भाई मुगल-सेना के मनसबदार हैं। वे उड़ीसा के पठानों से हुई लड़ाई में घायल होकर संकट में पड़ गये थे। उनकी विपत्ति का समाचार सुन बेगम की अनुमति लेकर मैं उनको देखने गई थी। उड़ीसा में मैंने बहुत देर कर

दी। अब अधिक विलम्ब उचित नहीं। तुमसे बहुत समय से भेंट नहीं हुई थी, इसीलिए दो दिन ठहरकर जा रही हूँ।

मेह०—बेगम के पास किस दिन पहुँचने का वचन दे आई हो?

मोती समझ गई, मेहरउन्निसा व्यंग कर रही है। परिमार्जित किन्तु मर्मभेदी व्यंग करने में मेहरउन्निसा जैसी निपुण थी, मोती वैसी नहीं थी। किन्तु वह भी घबड़ानेवाली नहीं थी। उसने उत्तर दिया—दिन पहले से निश्चित करके तीन महीने यात्रा करना क्या संभव है? किन्तु देर बहुत हो चुकी है। और अधिक विलम्ब असन्तोष का कारण बन सकता है!

मेहरउन्निसा ने भुवन-मोहिनी हँसी हँसते हुए कहा--किसके असन्तोष की आशंका कर रही हो। युवराज के या उनकी बेगम के?

जरा झेपकर मोती ने कहा—इस बेशर्म को क्यों शर्मिन्दा करना चाहती हो? दोनो को ही असन्तोष हो सकता है।

मेह०—परन्तु पूछती हूँ तुम स्वयं बेगम का स्थान क्यों नहीं लेतीं? सुना था, शाहजादा सलीम तुम्हें ब्याह कर खास बेगम बनायँगे; उसका कहाँ तक हुआ?

मो०---किन्तु मैं तो सहज ही पराधीन हूँ; फिर भी जो कुछ स्वाधीनता है, उसे क्यों नष्ट होने दूं! बेगम की संगिनी हूँ, इसलिए अनायास ही उड़ीसा आ सकी हूँ। सलीम की बेगम होती तो क्या मैं उड़ीसा जा सकती?

मेहर०—दिल्लीपति की प्रधान बेगम को उड़ीसा आने की जरूरत ही क्या?

मो०--सलीम की प्रधान बेगम बनूंगी, ऐसी स्पर्द्धा मैं कभी नहीं करती। सारे हिन्दुस्तान में केवल मेहरउन्निसा दिल्लीपति की प्राणेश्वरी होने योग्य है।

मेहरउन्निसा ने लज्जा से सिर झुका लिया। थोड़ी देर निरुत्तर

रहकर बोली--बहन ! मैं ऐसा नहीं सोचती कि तुमने मुझे चोट पहुँचाने के लिए यह बात कही है, या मेरा मन समझने के लिए कहा। किन्तु तुमसे मेरी यह प्रार्थना है कि मैं शेरअफ़गन की स्त्री हूँ, तन मन वचन से शेरअफ़गन की दासी हूँ, इस बात को भूलकर तुम कोई बात मत सोचो या कहो।

निर्लज्जा मोती इस तिरस्कार से घबड़ाई नहीं, वरन् और भी सुयोग पा कहने लगी—तुम अपने पति को प्राणों के समान प्यार करती हो, यह मैं अच्छी तरह जानती हूं। इसीलिए छल से, यह प्रसंग तुम्हारे सामने लाने की यह धृष्टता मैंने की है। सलीम आज तक तुम्हारे सौंदर्य का मोह भुला नहीं सके हैं, यह तुमको जता देना ही मेरा उद्देश्य है। सावधान रहना।

मेहर०—अब मैं समझी। किन्तु आशंका किस बात की ?

मोती ने जरा इधर-उधर करके कहा—आशंका है वैधव्य की।

इतना कहकर मोती मेहरउन्निसा के चेहरे की तरफ तीक्षण दृष्टि से ताकने लगी, किन्तु भय या प्रसन्नता का कोई चिन्ह उसे वहाँ दिखाई नहीं पड़ा। मेहरउन्निसा ने दर्प के साथ कहा—वैधव्य की आशंका ? शेरअफ़ग़न आत्मरक्षा करने में असमर्थ नहीं हैं। विशेषत: अकबर बादशाह के राज्य में उनके पुत्र भी बिना अपराध दूसरे के प्राण लेकर बच न सकेंगे।

मो०--सच है, किन्तु सबसे ताजा समाचार आगरे का यह है कि अकबर बादशाह मर चुके हैं। सलीम सिंहासन पर बैठ गये हैं। दिल्लीश्वर को रोकने का सामर्थ्य किसमें है ?

मेहरउन्निसा ने फिर कुछ नहीं सुना। उसका सर्वाङ्ग सिहरकर काँपने लगा। उसने सिर झुका लिया, दोनो नेत्रों से आँसू बहने लगे। मोती ने पूछा—रो क्यों रही हो ?

मेहरउन्निसा ने लम्बी आह भरते हुए कहा—सलीम भारतवर्ष के सिंहासन पर हैं, किन्तु मैं कहाँ ?

मोती की मनोकामना सिद्ध हो गई। बोली--तो तुम अभी तक युवराज को एकदम भूल नहीं सकी हो ?

मेहरउन्निसा गद्गद् स्वर से बोली—किसको भूल जाऊँ ? अपने जीवन को भूल जाऊँ, तो भी युवराज को न भूल सकूँगी। किन्तु सुनो बहन ! अकस्मात् मन का रहस्य खुल गया। तुमने यह बात सुन ली; किन्तु मेरी शपथ--यह बात किसी दूसरे के कानों में न पहुँचे।

मोती--अच्छी बात है। किन्तु जब सलीम सुनेंगे कि मैं बर्दवान आई थी, तब वे अवश्य ही पूछेंगे कि मेहरउन्निसा मेरे बारे में क्या कहती थी ? तब मैं उनको क्या उत्तर दूँगी ?

मेहरउन्निसा ने कुछ देर तक सोचकर कहा--कह देना कि मेहरउन्निसा मन में सदा उनका ध्यान करती रहेगी। आवश्यकता पड़ने पर उनके लिए अपने प्राण तक निछावर कर देगी, किन्तु कभी अपना कुल-मान कलंकित न करेगी। दासी के पति के जीवित रहते वह कभी दिल्लीश्वर को मुँह न दिखावेगी। और यदि दिल्लीश्वर द्वारा उसके पति की हत्या की जायगी, तो स्वामी के हत्यारे के साथ इस जन्म में उसका मिलन कदापि न होगा।

बात समाप्त होते ही मेहरउन्निसा उस स्थान से उठ गई। मोती बीबी चकित रह गई। इस वार्तालाप में जीत मोती बीबी की ही हुई। मेहरउन्निसा के चित्त का गुप्तभाव मोती बीबी पा गई, मोती बीबी का मनमंत्र मेहरउन्निसा कुछ भी न जान सकी। जो बाद में अपने बुद्धिबल से दिल्लीश्वर की भी ईश्वरी बन गई थी, वह भी मोती से पराजित हो गई। इसका कारण स्पष्ट है। मेहरउन्निसा प्रेमभाव से ओत-प्रोत थी, मोती बीबी स्वार्थ में रँगी थी।

मनुष्य हृदय की विचित्र गतियों का मोती को अच्छी तरह

अनुभव था। मेहरउन्निसा की बातों पर तर्क-वितर्क करके उसने जो निष्कर्ष निकाला, समय आने पर वही सच निकला। वह समझ गई कि मेहरउन्निसा जहाँगीर की सच्ची अनुरागिनी है, नारी-सुलभ दर्प में इस समय वह जो कुछ भी कहे रास्ता खुल जाने पर मन की गति को वह रोक न सकेगी। बादशाह की मनोकामना अवश्य ही पूरी कर देगी।

इस निष्कर्ष से मोती की आशा-आकांक्षाओं पर पानी फिर गया। किन्तु इससे क्या मोती जरा भी दुःखी हुई ? नहीं, वरन् कुछ सुख का ही अनुभव उसे हुआ। किस कारण ऐसी अनहोनी प्रसन्नता उत्पन्न हुई, पहले इसे मोती स्वयं समझ न सकी। वह आगरे के लिए रवाना हुई, राह में कई दिन लग गये। उसी समय में वह अपने मन का भाव समझी।

चौथा परिच्छेद

राजनिकेतन में

"पत्नीभावे आर तुमि भेवो न आमाय।"

—वीराङ्गना काव्य

मोती आगरा पहुँच गई। अब उसको मोती कहने की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं कई दिनों में उसकी सभी चित्तवृत्तियाँ एकदम परिवर्तित-सी हो गई थीं। जहाँगीर से उसकी भेंट हुई। जहाँगीर ने उसका पूर्ववत् आदर-सत्कार किया। उसके भाई का समाचार तथा रास्ते का क्षेमकुशल पूछा। लुत्फउन्निसा ने जो आशंका मेहरउन्निसा से प्रकट की थी वह सच हुई। दूसरी बातों के प्रसंग में वर्दवान की बात सुनकर जहाँगीर ने पूछा—तुम कह रही हो कि मेहरउन्निसा के यहाँ तुम दो

दिन ठहरी थीं, तो मेहरउन्निसा ने मेरे बारे में तुमसे क्या-क्या बातें कीं ? लुत्फउन्निसा ने निष्कपट हृदय से मेहरउन्निसा के अनुराग का परिचय दिया। सुनकर बादशाह खामोश हो गये। उनके बड़े-बड़े नेत्रों में आँसू की दो-चार बूंदें छलक आईं।

लुत्फउन्निसा ने पूछा--जहाँपनाह ! इस दासी ने शुभ समाचार सुनाया है। अभी तक दासी को कोई पुरस्कार देने का आदेश नहीं हुआ ?

बादशाह ने हंसकर उत्तर दिया—बीबी तुम्हारी आकांक्षाएं अपरिमित हैं।

लुत्फ०--जहाँपनाह ! दासी का इसमें दोष क्या है ?

बाद०—दिल्ली के बादशाह को मैंने तुम्हारा गुलाम बना दिया है, फिर भी पुरस्कार माँग रही हो ?

लुत्फउन्निसा ने हँसकर कहा—स्त्रियों की साधें अनेक होती हैं !

बाद०--तो अब कौन-सी साध पैदा हो गई है ?

लुत्फ०—पहले बादशाही हुक्म निकल जाय कि इस बांदी की अर्जी मंजूर होगी।

बाद०—यदि राजकार्य में विघ्न न पड़ता हो।

लुत्फ०--(हंसकर) एक के लिए दिल्लीपति के कार्यों में बाधा नहीं पड़ सकती।

बाद०—तो मैं स्वीकृति देता हूँ, साध क्या है, सुनूं।

लुत्फ०—इच्छा यह है कि एक विवाह और करूँगी।

जहाँगीर ठठाकर हंस पड़े। बोले—यह एक नये ढंग की साध है अवश्य ! कहीं सम्बन्ध पक्का हुआ है ?

लुत्फ०—वह तो ठीक हो गया है। केवल बादशाह के हुक्म की देर है। बादशाह की सम्मति न मिलने से कोई संबंध भी पक्का नहीं।

बाद०--मेरी सम्मति की आवश्यकता ही क्या है ? किसको इस सुख-समुद्र में तैराने की इच्छा तुमने की है।

लुत्फ०--दासी ने दिल्लीपति की सेवा की है, इस कारण वह दो पुरुषगामिनी नहीं हो सकती। यह दासी अपने पति के ही साथ ब्याह करने की अनुमति माँग रही है।

बाद०--ठीक ही है ! तब इस पुराने नफर की क्या दशा होगी ?

लुत्फ०--दिल्लीश्वरी मेहरउन्निसा को दे जाऊँगी।

बाद०--दिल्लीश्वरी मेहरउन्निसा कौन है ?

लुत्फ०--जो होनेवाली हैं।

जहाँगीर मन में समझ गये कि मेहरउन्निसा दिल्लीश्वरी बनेंगी, यह लुत्फउन्निसा निश्चित समझ गई है। अपनी आकांक्षा विफल हो गई है, इसलिए शीशमहल से विरक्त हो चली जाना चाहती है।

इस प्रकार समझकर जहाँगीर कुछ दुःखी हो चुप हो गये। लुत्फ-उन्निसा ने पूछा--बादशाह की क्या इस सम्बन्ध में सहमति नहीं है ?

बाद०--मेरी असहमति नहीं है। किन्तु पति के साथ पुनर्विवाह की आवश्यकता क्या है ?

लुत्फ०--दुर्भाग्यवश प्रथम विवाह में पति ने मुझे पत्नीवत् ग्रहण नहीं किया था। अब वे जहाँपनाह की दासी को ठुकरा न सकेंगे।

बादशाह जरा मुसकराकर फिर गंभीर हो गये। उन्होंने कहा--प्यारी ! तुमको अदेय मेरे पास कुछ नहीं है। यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो तुम ऐसा ही करो। किन्तु मुझे तुम क्यों छोड़ जाओगी ? एक आकाश में क्या चन्द्र-सूर्य दोनो ही नहीं विराजते ? एक डंठल में क्या दो फूल नहीं खिलते ?

लुत्फउन्निसा ने विस्फारित नेत्रों से बादशाह की तरफ देखकर कहा--छोटे फूल खिल सकते हैं, किन्तु एक मृणाल में दो कमल नहीं

खिलते। जहाँपनाह! आपके रत्नसिंहासन के नीचे मैं काँटा बनकर क्यों रहूँ?

लुत्फउन्निसा उठकर अपने निवास-कक्ष में चली गई। उसको ऐसी मनोवांछा क्यों उत्पन्न हुई, यह उसने जहाँगीर से नहीं बताया। अनुभव से जैसा समझा जा सकता है, अनुमान से जैसा जाना जा सकता है, वैसा ही सोच-समझकर जहाँगीर चुप हो रहे। गूढ़ रहस्य कुछ भी न जान सके। लुत्फउन्निसा का हृदय पत्थर है। सलीम की नारी-हृदय पर विजय पानेवाली राज्य-कान्ति भी कभी उसके मन को मोह न सकी। किन्तु इस बार पाषाण में भी कीट का प्रवेश हो चुका था।

पाँचवाँ परिच्छेद

आत्म-मंदिर में

"जनम अवधि हम रूप निहारनु
नयन न तिरपित भेल।
सेइ मधुर बोल स्रवनहिं सुननु
श्रुति पथे परश ना गेल।
कत मधु यामिनी रमस गँवाइनु
ना बुझनु कैसन केल।
लाख लाख युग हिये हिये राखनु
तबु हिया जुड़ान ना गेल।
यत यत रसिक जन रसे अनुगमन
अनुभव काहु ना पेख।
विद्यापति कहे प्राण जुड़ाइ ते
लाखे ना मिलिल एक॥"

लुत्फउन्निसा ने बहुत प्रसन्न हो घर आकर पेशमन को बुलाकर अपनी वेष-भूषा उतार दी। स्वर्ण-मुक्तादि-खचित वस्त्र उतारते हुए उसने पेशमन से कहा—यह पोशाक तुम ले जाओ।

सुनकर पेशमन कुछ पशोपेश में पड़ गई। पोशाक बड़ी कीमती थी। अभी हाल में ही तैयार हुई थी। पेशमन ने पूछा—यह पोशाक मुझे किसलिए? आज का समाचार क्या है?

लुत्फउन्निसा—समाचार शुभ ही है।

पे०—यह मैं समझ रही हूँ। मेहरउन्निसा का भय क्या दूर हो गया है?

लुत्फ०—एकदम दूर हो गया। अब उस सम्बन्ध में कोई चिन्ता नहीं रही।

पेशमन प्रसन्नता से नाचकर बोली—तो अब मैं बेगम की दासी हुई।

लुत्फ०—यदि तुम बेगम की दासी बनना चाहती हो तो मैं मेहर-उन्निसा से सिफारिश कर दूँगी।

पे०—यह क्या? आप कह तो रही थीं कि मेहरउन्निसा के बेगम बनने की कोई सम्भावना नहीं रही।

लुत्फ०—यह तो मैंने नहीं कहा। मैंने कहा कि उस सम्बन्ध में मुझे अब कोई चिन्ता नहीं है।

पे०—चिन्ता क्यों नहीं? आप यदि आगरा की महारानी न हुईं तो सब किये-कराये पर पानी फिर गया।

लुत्फ०—आगरा के साथ मैं कोई सम्पर्क न रखूंगी।

पे०—यह क्या? मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आता। तो फिर आज का शुभ समाचार क्या है, समझाकर कहिए।

लुत्फ०—शुभ समाचार यह है कि मैं जिन्दगी भर के लिए आगरा छोड़कर जा रही हूँ।

पे०---कहाँ जाइएगा ?

लुत्फ०---जाकर बंगाल में रहूँगी। यदि हो सका तो किसी भले आदमी की गृहिणी बनूँगी।

पे०---यह व्यंग तो नया ही है, किन्तु सुनने से तो प्राण सिहर उठते हैं।

लुत्फ०---मैं व्यंग नहीं कर रही हूँ। मैं सचमुच आगरा छोड़कर जा रही हूं। बादशाह से विदा ले आई हूँ।

पे०---ऐसी कुप्रवृत्ति आपके मन में क्यों पैदा हुई ?

लुत्फ०---यह कुप्रवृत्ति नहीं है। बहुत दिन आगरे में घूमती रही, क्या फल मिला ? सुख की तृष्णा बचपन से बहुत प्रबल थी। उस तृष्णा की परितृप्ति के निमित्त बंगाल छोड़कर यहाँ तक आई, इस रत्न को पाने के लिए मैंने अपना कौन-सा धन नहीं दे डाला ? कौन-सा दुष्कर्म नहीं किया ? और जिन उद्देश्यों से इस हद तक मैंने यह सब किया, उनमें कौन मुझे नहीं प्राप्त हुआ ? ऐश्वर्य, सम्पद, धन, गौरव, प्रतिष्ठा सब ही तो प्रचुर परिमाण में मैंने भोग किया। इतना होने पर भी क्या हुआ ? आज यहाँ बैठकर सारा दिन मन ही मन गुनने पर कह सकती हूँ कि एक दिन के लिए भी मुझे सुख नहीं मिला। एक मुहूर्त के लिए भी सुखभोग नहीं किया। कभी मैं तृप्त नहीं हुई। तृष्णा बढ़ती ही गई। चेष्टा करने से मैं और भी सम्पत्ति, और भी ऐश्वर्य पा सकती हूँ, किन्तु किसलिए ? इन सब में यदि सुख रहता तो इतने दिनों में एक दिन के लिए भी मैं सुखी हुई होती। सुख की यह अभिलाषा पहाड़ी नदी की तरह है---पहले निर्मल क्षीण धारा निर्जन प्रदेश से निकलती है, अपने गर्भ में आप ही छिपी रहती है, कोई भी जानता नहीं। आप ही आप कलकल करती है, सुननेवाला कोई नहीं। धीरे-धीरे जितनी दूर वह आगे बढ़ती है, देह बढ़ती जाती है, जल उतना ही कीचड़ से गन्दा होता जाता है। केवल यही नहीं, कभी हवा

तेज बहने लगती है, तो लहरें उठने लगती हैं; घड़ियाल, मकरादि जन्तु उसमें रहने लगते हैं। और भी शरीर बढ़ जाता है, जल और भी कीचड़ से युक्त हो गंदा हो जाता है, खारी हो जाता है। असंख्य बालुकाकण, विस्तृत मरुभूमि नदी के अन्तस्तल में छिपे रहते हैं, वेग धीमा पड़ जाता है, तब वह कीचड़ से भरा नदी-शरीर अनन्त अथाह सागर में कहाँ छिपता है, कौन बता सकता है ?

पे०—इन बातों का अर्थ मैं कुछ भी न समझ सकी। आखिर इन सब में तुमको सुख क्यों नहीं होता ?

लुत्फ०—क्यों नहीं होता, यह मैं इतने दिनों में अब समझ पाई हूँ। तीन वर्ष तक राजमहल की छाया में मुझे जो सुख नहीं मिला, उड़ीसा से लौटते समय राह में एक ही रात में मुझे उस सुख का अनुभव हुआ। इसीलिए मैं अब समझ गई हूँ।

पे०—क्या समझ गई हो ?

लुत्फ०—इतने दिन मैंने हिन्दुओं की देवमूर्ति की तरह जीवन बिताया, जिनका बाह्य शरीर स्वर्ण-रत्नादि से सुसज्जित रहता है, किन्तु भीतर पत्थर ही होता है। इन्द्रियसुख की खोज में मैं सदा आग के बीच भ्रमती रही हूँ। किन्तु कभी मैंने आग को स्पर्श नहीं किया। अब एक बार उस स्पर्श का अनुभव करना चाहती हूं, यदि पत्थर में तलाशने से एक रक्तशिरा-समन्वित अन्त:करण पा जाऊँ !

पे०—इसका भी तो कोई अर्थ मैं समझ न सकी।

लुत्फ०—मैंने क्या इस आगरा शहर में कभी किसी को प्यार किया है ?

पे०—(चुपके-चुपके) किसी को भी नहीं।

लुत्फ०—तो क्या मैं पत्थर नहीं हूँ ?

पे०—तो अब यदि प्यार करने की इच्छा हो, तो क्यों नहीं करतीं ?

लुत्फ०—इच्छा तो है, इसीलिए आगरा छोड़कर जा रही हूँ।

पे०—इसकी क्या जरूरत है ? आगरे में क्या आदमी नहीं हैं कि तुम गँवारों के देश में जा रही हो ? इतने दिनों जो तुमसे प्यार करते रहे हैं, उनको ही तुम क्यों नहीं प्यार करतीं ? सौन्दर्य, धन, ऐश्वर्य सभी में, दिल्ली के शाहंशाह की अपेक्षा बड़ा इस संसार में और कौन है ?

लुत्फ०—आकाश में चन्द्र-सूर्य के रहते भी जल नीचे ही की ओर क्यों गिरता है ?

पे०—क्यों गिरता है ?

लुत्फ०—यह है विधि का विधान ।

लुत्फउन्निसा ने सारी बातें खोलकर नहीं कहीं । पत्थर में अग्नि प्रविष्ट हो चुकी थी । पत्थर पिघल चला था ।

छठा परिच्छेद

चरणों के नीचे

"काय मन: प्राण आमि सँपिब तोमारे ।

भुञ्ज आसि राजभोग दासीर आलये ।"—वीराङ्गना काव्य

खेत में बीज के रोपे जाने पर आप ही अंकुर निकल आता है। कब अंकुर निकलता है, कोई जान नहीं पाता—कोई देख नहीं पाता। किन्तु एक बार बीज के बोये जाने पर, बोनेवाला कहीं भी क्यों न रहे, धीरे-धीरे अंकुर से वृक्ष उठकर आकाश में लहलहाने लगता है। शुरू में पौधा एक अंगुल आकार में रहता है, कोई देखकर भी नहीं देख पाता। धीरे-धीरे वह तिल-तिल परिमाण में बढ़ता रहता है। धीरे-धीरे वही वृक्ष आधा हाथ, एक हाथ, दो हाथ परिमाण का हो जाता है। तो भी यदि उससे किसी की स्वार्थसिद्धि की सम्भावना न हुई तो कोई उसे नहीं

देखता, देखकर भी ध्यान उधर नहीं ले जाता। दिन जाते हैं, महीने जाते हैं, वर्ष बीत जाते हैं, धीरे-धीरे उस पर लोगों की नजर पड़ने लगती है। फिर तो ध्यान में न पड़ने की कोई बात ही नहीं रहती—धीरे-धीरे वह वृक्ष और बड़ा हो जाता है, उसकी छाया से दूसरे वृक्ष नष्ट होते हैं,—और क्या चाहिए, खेत में फिर दूसरा पौधा टिक नहीं पाता।

लुत्फउन्निसा का प्रेम इसी तरह बढ़ा था। उस दिन अकस्मात् प्रेम-पात्र से भेंट हो गई, उस समय के प्रेम-संचार को वह विशेष रूप से जान न पाई। किन्तु बीज तभी जम गया था। उसके बाद फिर भेंट नहीं हुई। किन्तु अलग रहते हुए भी वह मुखमण्डल बराबर याद आता रहा, स्मृतिपट में उस मुखमण्डल को अंकित करना कुछ-कुछ सुखकर प्रतीत होने लगा। बीज से अंकुर पैदा हुआ। स्वरूप पर अनुराग उत्पन्न हुआ। चित्त का धर्म यह है कि जो मानसिक कर्म जितनी अधिक बार किया जाता है, उस काम में उतनी ही अधिक लिप्सा बढ़ती है, वह कार्य धीरे-धीरे स्वभाव में अभ्यस्त हो जाता है। लुत्फउन्निसा उस स्वरूप का दिन-रात मन ही मन चिन्तन करने लगी। प्रबल दर्शनाभिलाषा उत्पन्न हुई, साथ ही साथ उसकी सहज इच्छा का प्रवाह रोकना कठिन हो गया। दिल्ली की सिंहासन-लालसा भी उसके लिए तुच्छ हो गई। सिंहासन मानो मन्मथ-शर लगने से उत्पन्न अग्निपुञ्ज से घिरा हुआ-सा प्रतीत होने लगा। राज्य, राजधानी, राजसिंहासन—सबको विसर्जित कर प्रियतम के दर्शनार्थ वह आतुर हो उठी। प्रियतम थे नवकुमार शर्मा।

इसीलिए लुत्फउन्निसा मेहरउन्निसा की आशामेटिनी बातें सुनकर भी दुःखी नहीं हुई थी। इसीलिए आगरा आकर सम्पत्तिरक्षा के लिए उसने कोई प्रबन्ध नहीं किया। इसीलिए जीवन भर के लिए उसने बादशाह से विदाई ले ली।

लुत्फउन्निसा सप्तग्राम पहुँच गई। प्रमुख सड़क के पास शहर में एक भव्य इमारत लेकर उसी में रहने लगी। सड़क से गुजरनेवाले पथिकों ने देखा, यह अटारी एकाएक सुनहले कीमख़ाब से कढ़े वस्त्रों से सुसज्जित दास-दासियों से परिपूर्ण हो गई है। हर कमरे व फर्श की सजावट अति मनोहर है। गन्धद्रव्य, गन्धवारि, कुसुमगुच्छ सर्वत्र सुगन्ध फैला रहे हैं। सोना, चाँदी, हाथी दाँतों से खचित तरह-तरह की नक्काशीदार द्रव्य गृह-शोभा बढ़ाने के लिए सर्वत्र जगमगा रहे हैं। ऐसे ही सजाये गये एक कमरे में लुत्फउन्निसा शिर झुकाये बैठी है। एक पृथक् आसन पर नवकुमार बैठे हुए हैं। सप्तग्राम में लुत्फउन्निसा के साथ नवकुमार की और दो-एक बार भेंट हो चुकी थी; उससे लुत्फ-उन्निसा का मनोरथ कहाँ तक सफल हुआ था, यह आज के वार्तालाप से ज़ाहिर हो जायगा।

नवकुमार ने कुछ देर तक चुप रहकर कहा—मैं अब चल रहा हूँ। तुम अब कभी मुझे मत बुलाना।

लुत्फउन्निसा ने अनुरोधपूर्वक कहा—जाओ नहीं। और थोड़ी देर ठहरो। मैं अपनी बात पूरी कर लूँ।

नवकुमार ने और भी थोड़ी देर तक प्रतीक्षा की, किन्तु लुत्फ-उन्निसा ने कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर बाद नवकुमार ने पूछा—और क्या कहना चाहती हो? लुत्फउन्निसा ने उत्तर कुछ नहीं दिया—चुपचाप रो रही थी।

यह देख नवकुमार उठ खड़े हुए। लुत्फउन्निसा ने उनके वस्त्र का छोर पकड़ लिया। नवकुमार ने कुछ रुष्ट होकर कहा—क्या है; कुछ कहो भी!

लुत्फउन्निसा बोली—तुम क्या चाहते हो? संसार में क्या माँगने को मेरे योग्य कुछ भी नहीं है? धन, सम्पद, मान, प्रेम, रंग, रूप सब मैं दूँगी, उनका प्रतिदान मैं कुछ भी नहीं चाहती। केवल तुम्हारी

दासी बनना चाहती हूँ। तुम्हारी पत्नी बनूं, यह गौरव भी मैं नहीं चाहती--केवल दासी।

नवकुमार ने उत्तर दिया--मैं दरिद्र ब्राह्मण, जन्म भर दरिद्र ब्राह्मण ही रहूँगा। तुम्हारे दिये धन-दौलत से एक यवनी का प्रेमपात्र बनना मैं नहीं चाहता।

यवनी का प्रेमपात्र--नवकुमार अब तक जान नहीं सके हैं कि यह स्त्री उनकी ही पत्नी है। लुत्फउन्निसा सिर झुकाये बैठी रही। नवकुमार ने उसके हाथ से अपने वस्त्र का छोर खींच लिया। लुत्फउन्निसा ने फिर वस्त्र का छोर पकड़कर कहा—अच्छी बात है, जाने दो इसे। यदि विधाता की यही इच्छा है तो सभी चित्तवृत्तियों को अथाह जल में डुबा दूंगी। मैं और कुछ नहीं चाहती, कभी-कभी तुम इसी रास्ते से आते-जाते रहना, दासी समझकर कभी-कभी दर्शन देते रहना, केवल अपनी आंखों को तृप्त करूँगी।

नव०--तुम हो यवनी--पर स्त्री--तुम्हारे साथ इस प्रकार बात-चीत करना भी दोष है। तुम्हारे साथ अब मेरी भेंट कभी न होगी।

क्षणभर दोनो चुप रहे। लुत्फउन्निसा के हृदय में तूफान उठ रहा था। पत्थर की मूर्ति की तरह वह निश्चेष्ट बनी रही! नवकुमार के कुर्ते का छोर उसने छोड़ दिया। बोली--जाओ।

नवकुमार चल पड़े। दो-चार कदम ही आगे अभी बढ़े थे, एकाएक लुत्फउन्निसा वायुवेग से उखाड़े गये वृक्ष की तरह उनके पैरों जा पड़ी। बाहुलता से दोनो चरणों को बांध कातर स्वर से बोली--ओह निर्दयी! मैं तुम्हारे लिए आगरा का सिंहासन त्यागकर आ रही हूँ, तुम मेरा त्याग न करो।

नवकुमार ने कहा---तुम फिर आगरा लौट जाओ, मेरी आशा तुम छोड़ दो।

इस जन्म में नहीं। लुत्फउन्निसा तीर की तरह उठ खड़ी हुई, दर्प के साथ बोली,----इस जन्म में तुम्हारी आशा न छोड़ूंगी। माथा ऊपर तान, गरदन जरा टेढ़ी कर, नवकुमार के मुँह की तरफ अनिमेष बड़ी-बड़ी आँखें गड़ाकर राज-राजमोहिनी खड़ी हो गई। जो कभी न लचकनेवाला गर्व प्रेमाग्नि में पिघलकर कोमल हो गया था, उसकी ज्योति फिर चमक उठी। जो अजेय मानसिक शक्ति संपूर्ण भारत-राज्य के शासन के प्रलोभन से नहीं डिगी, वही शक्ति आज फिर प्रेम से कातर शरीर में संचित हो गई। ललाट के ऊपर शिराओं के तन जाने से सुन्दर रेखाएँ बन गईं। ज्योतिर्मय नेत्र रविकिरणों से मुखरित समुद्र-जलवत् चमकने लगे, नाक क्रोध से फड़कने लगी। जलस्रोत में विहार करनेवाली राजहंसी जिस तरह गति में अवरोध डालनेवाले की तरफ गरदन तानकर खड़ी हो जाती है, फन दलित होते ही सर्पिणी जिस तरह फन ऊपर उठाकर खड़ी हो जाती है उसी तरह उन्मादिनी यवनी शिर ऊपर तानकर खड़ी हो गई। उसने कहा—इस जन्म में नहीं! तुम मेरे होकर ही रहोगे।

उस क्रुद्ध नागिन की तरफ देखकर नवकुमार सहम गये। लुत्फउन्निसा की अनिर्वचनीय आकृति उस समय जैसी उन्होंने देखी, वैसी और कभी नहीं देखी थी। वह वज्रपात-सूचक बिजली की तरह सुन्दर, किन्तु भयोत्पादक थी। नवकुमार भयभीत हो भाग जाने को उद्यत हुए कि सहसा उनको उसी प्रकार की एक अन्य तेजस्विनी मूर्ति की याद आ गई। एक दिन नवकुमार अपनी प्रथम पत्नी पद्मावती पर नाराज होकर उसको अपने शयन-कक्ष से निकाल देने को तत्पर हो गये थे। द्वादशवर्षीया वह बालिका बड़े दर्प के साथ उनकी तरफ घूमकर खड़ी हो गई थी, इसी तरह उसकी आँखें जल उठी थीं, इसी तरह ललाट पर रेखाएँ दिखाई पड़ी थीं, इसी तरह नथुने फूलने लगे थे, इसी तरह शिर कांपने लगा था। बहुत दिनों से वह

मूर्ति याद नहीं पड़ी थी । आज अचानक वह याद ताजी हो गई । उस तथा इस मूर्ति में बहुत समता प्रतीत हुई ।

संशय में पड़ नवकुमार ने सकुचाते हुए धीरे से पूछा—तुम कौन हो ?

यवनी की आँखों की पुतलियाँ और भी विस्फारित हो गईं । बोली—मैं हूँ पद्मावती ।

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना लुत्फउन्निसा वहाँ से दूसरे कमरे में चली गई । नवकुमार भी अन्यमनस्क हो कुछ शंकित चित्त से अपने घर गये ।

सातवाँ परिच्छेद

उपनगर के छोर पर

"I am settled, and bend up each corporal agent to this terrible beat." —Macbeth.

दूसरे कमरे में जाकर लुत्फउन्निसा ने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया । दो दिन तक वह उस कमरे से बाहर नहीं निकली । इन दो दिनों में उसने अपना कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चित कर लिया । कुछ कर गुज़रने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो गई । सूर्य अस्ताचल को जा रहे थे । तब लुत्फउन्निसा पेशमन की सहायता से वेशभूषा रच रही थी । आश्चर्य-जनक थी यह वेशभूषा । पेशवाज़ नहीं, पायजामा नहीं—ओढ़नी नहीं, नारीवेश का चिह्न भी नहीं । जो वेशभूषा उसने आज पहनी उसे आइने में देखकर पेशमन से बोली—क्या कहती हो पेशमन, अब मैं पहचानी जा सकती हूँ ?

पेशमन ने कहा—किसमें सामर्थ्य है ?

लु०—तो मैं अब जा रही हूँ। मेरे साथ कोई दास-दासी न जावे।

पेशमन ने कुछ संकुचित होकर कहा—यदि दासी का अपराध क्षमा हो तो एक बात पूछूं।

लुत्फउन्निसा—क्या ?

पेशमन—आप क्या करना चाहती हैं ?

लुत्फउन्निसा बोली—किसी प्रकार कपालकुण्डला से उसके पति का चिरविच्छेद। बाद को वे मेरे हो जायंगे।

पे०—बीबी ! अच्छी तरह आप सोच लें। वह है घना जंगल, रात भी हो चली है। आप अकेली जा रही हैं।

लुत्फउन्निसा पेशमन की बात का कोई उत्तर न दे घर से निकल पड़ी। सप्तग्राम के जिस उजड़े, जंगल से पूर्ण उपनगर के छोर पर नवकुमार रहते थे, उसी तरफ चलने लगी। वहाँ पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। नवकुमार के मकान के पास ही एक घना जंगल था, पाठकों को याद होगा। उसी के छोर पर पहुँचकर एक पेड़ के नीचे बैठ गई। कुछ देर तक बैठी, जिस दुस्साहसपूर्ण कार्य में प्रवृत्त हुई थी, उसी सम्बन्ध में सोचने लगी। संयोगवश उसको एक ऐसी सहायता प्राप्त हो गई, जिसका अनुमान भी उसे कभी नहीं था।

लुत्फुउन्निसा जहाँ बैठी थी, वहाँ उसे निरन्तर एक स्वर से उच्चारित एक मनुष्य-कंठस्वर सुनाई पड़ने लगा। वह उठ खड़ी हुई। चारो तरफ निगाह दौड़ाकर उसने देखा कि वन में एक ओर कुछ प्रकाश दिखाई पड़ रहा है। लुत्फउन्निसा में साहस पुरुषों से अधिक था। जहाँ प्रकाश हो रहा था, वहाँ गई। पहले पेड़ की आड़ से देखने लगी कि आखिर बात क्या है ? देखा कि जो लौ उठ रही थी, वह होमाग्नि की ज्योति है; जो शब्द वह सुन रही थी, वह मंत्रपाठ का शब्द था। मन्त्र में एक शब्द उसकी समझ में आ गया। वह था

किसी एक का नाम। वह नाम सुनते ही लुत्फउन्निसा होम करनेवाले के समीप जाकर बैठ गई।

लुत्फउन्निसा को इस समय यहीं बैठी छोड़कर दूसरी ओर चलें।

पाठकों को बहुत दिनों से कपालकुण्डला का कोई समाचार नहीं मिला है। अब कपालकुण्डला का समाचार जानना आवश्यक भी हो गया है।

चतुर्थ खण्ड

पहला परिच्छेद

शयनागार में

"राधिकार बेड़ि भाङ्ग, ए मम मिनति।"

—व्रजाङ्गना काव्य

लुत्फउन्निसा के आगरा जाने और वहाँ से सप्तग्राम लौटकर आने में प्रायः एक वर्ष समाप्त हो गया था। कपालकुण्डला एक वर्ष से अधिक समय से नवकुमार की गृहिणी बनी हुई है। जिस दिन सन्ध्या समय लुत्फउन्निसा जंगल में पहुँची, उस दिन कपालकुण्डला अनमनी होकर शयनकक्ष में बैठी हुई थी। पाठकों ने समुद्र के किनारे बिखरे केशधारिणी आभूषणविहीन जिस कपालकुण्डला को देखा था, यह कपालकुण्डला वह कपालकुण्डला नहीं है। श्यामासुन्दरी की भविष्यवाणी सत्य हुई। पारस के स्पर्श से योगिनी गृहिणी बन गई है। अब तो असंख्य काले चमकते हुए भुजंगव्यूह के समान एड़ी तक लटकते हुए केशपुंजों के पिछले भाग में स्थूल वेणी गूँथ दी गई है। वेणी गूँथने में भी कलानैपुण्य दिखाई पड़ रहा है। केशों की सजावट में बारीक कारीगरी श्यामासुन्दरी के शृंङ्गार-कौशल का परिचय दे रही है, फूलमाला भी चारो तरफ से मुकुट के घेरे की तरह वेणी को घेरे हुए हैं। केशों का जो भाग वेणी में गूँथा नहीं गया है, वह माथे पर सर्वत्र समान ऊँचाई में रह गया हो ऐसी बात नहीं है। चढ़ाव-उतारवार छोटी-छोटी काली घुँघराली तरंगमालाओं की तरह वह शोभित हो रहे हैं। अब मुखमण्डल केशभार से अधढँका नहीं

है; पूर्णचन्द्र के समान सुशोभित हो रहा है। केवल जहाँ-तहाँ वेणी से बिछुड़े हुए केशगुच्छ मस्तक पर पसीने से चिपक गये हैं। उसका वर्ण पूर्णचन्द्र की किरणों की तरह मनोहर है। दोनो कानों में सोने के कर्णफूल झूम रहे हैं, गले में सोने का हार झूल रहा है। शरीर के वर्ण से वे मलिन नहीं हुए हैं, मानो अर्धचन्द्र की चाँदनी का परिधान पहने, पृथ्वी पर रात्रिकालीन पुष्पों की भाँति वह शोभित हो रहे हों। श्वेत वस्त्र धारण किये है। वह श्वेत वस्त्र अर्धचन्द्र से आलोकित आकाशमण्डल में हल्के सफेद बादल की तरह छबि दे रहा है।

वर्ण तो अर्धचन्द्र की छिटकी हुई चाँदनी की ही तरह है किन्तु पूर्वापेक्षा कुछ स्याह हो गया है, मानो आकाश के किनारे कहीं काला बादल आ गया है। कपालकुण्डला अकेली नहीं थी; उसके पास सखी श्यामासुन्दरी भी बैठी थी। दोनो में परस्पर कुछ बातचीत चल रही थी। उसका भी कुछ अंश पाठक सुन सकते हैं।

कपालकुण्डला ने पूछा---ननदोईजी और कितने दिन ठहरेंगे ?

श्यामा बोली---कल शाम को चले जायँगे। अहा ! आज रात को यदि वही जड़ी मैं उखाड़ लाती, तो भी उन्हें वश में करके नारी-जन्म सार्थक कर पाती। कल रात घर से जरा चली गई थी, तो लात-झाड़ू की मार खानी पड़ी थी, अब आज घर से कैसे निकलूं ?

कपा०---दिन में क्यों नहीं उखाड़ लातीं ?

श्यामा०—दिन में उखाड़ने से क्या फल होगा ? ठीक आधी रात में केशों को बिखराकर उसे लाना पड़ता है, तो बहन, मन की मन ही में रह गई।

कपा०---अच्छा, मैं तो आज दिन के समय उस जड़ी को पहचान आई हूं, और जिस जंगल में वह होती है उसे भी देख आई हूँ, आज तुमको जाना न पड़ेगा। मैं अकेली जाकर वह जड़ी उखाड़ लाऊँगी।

श्यामा०---एक दिन जो हो गया, हो गया। रात में अब तुम बाहर मत जाना।

कपा०---इसके लिए तुम क्यों चिन्ता करती हो! सुन चुकी हो, रात को घूमने की मेरी आदत बचपन से है। बल्कि सच तो यह है कि यदि मेरी वह आदत न होती तो तुम्हारी-मेरी चार आँखें न हुई होतीं।

श्यामा०—इस भय से मैं नहीं कह रही हूँ। किन्तु रात के समय अकेली घूमना क्या गृहस्थ की :-त्रेट के लिए उचित है? हम दोनो के साथ-साथ जाने पर भी इतनी झिड़कियाँ खानी पड़ीं, तुम्हारे अकेली जाने से फिर क्या बचत है ?

कपा०—इसमें आपत्ति ही क्या है ? तुम क्या समझती हो कि मैं रात में घर से बाहर जाने से ही दुश्चरित्रा हो जाऊँगी ?

श्यामा०—मैं तो ऐसा नहीं सोचती किन्तु जो लोग दुष्ट स्वभाव के हैं, वे सभी इसी प्रकार बदनाम करते हैं।

कपा०—कहते हैं तो कहते रहें। उनके कहने से मैं खराब न हो जाऊँगी।

श्यामा०—यह तो ठीक है किन्तु तुमको कोई कुछ कहेगा तो मेरे मन में दुःख न होगा ?

कपा०—ऐसा व्यर्थ क्लेश न होने देना।

श्यामा०—यह भी कर सकती हूँ। किन्तु भैया को क्यों नाराज करोगी ?

कपालकुण्डला ने श्यामासुन्दरी पर अपना स्निग्धोज्ज्वल कटाक्ष फेंका। बोली—इसमें वे नाराज हो जायँ तो मैं क्या करूँ? यदि मैं यह जानती कि स्त्रियों का विवाह दासता है, तो कभी विवाह न करती।

इसके बाद बात आगे बढ़ाना श्यामासुन्दरी ने ठीक न समझ, काम-धंधों के बहाने उठकर चली गई।

कपालकुण्डला आवश्यक घरेलू कार्यों में जुट गई। कामकाज से

निपटकर जड़ी की खोज में घर से निकली, उस समय रात एक पहर बीत गई थी। चाँदनी चारो ओर छिटक रही थी। नवकुमार बाहरी कमरे में बैठे थे। कपालकुण्डला बाहर जा रही है, यह उन्होंने खिड़की से देख लिया। लपककर कमरे से बाहर निकल उन्होंने मृण्मयी का हाथ पकड़ लिया। कपालकुण्डला बोली—क्या है ?

नवकुमार ने पूछा--कहाँ जा रही हो ? उनके स्वर में तिरस्कार का भाव जरा भी नहीं था।

कपालकुण्डला--श्यामासुन्दरी अपने पति को वशीभूत करने के लिए एक जड़ी चाहती हैं, मैं उसी की खोज में जा रही हूँ।

नवकुमार ने पूर्ववत् कोमल स्वर में कहा---अच्छी बात है। लेकिन कल तो गई थीं ? आज फिर क्यों ?

कपा०—कल मिली नहीं थी, आज फिर ढूंढूंगी।

नवकुमार ने कोमल स्वर से कहा—अच्छा दिन के समय तलाश करने से भी तो हो सकता है ? नवकुमार का स्वर अत्यन्त स्नेहपूर्ण था।

कपा०—दिन में उखाड़ी जड़ी फलती नहीं है।

नव०—जड़ी ढूंढ़ने तुमको जाने की जरूरत क्या है ? मुझे उस पौधे का नाम बता दो। मैं उखाड़ लाऊँगा।

कपा०—मैं पौधा देखकर पहचान सकती हूँ। नाम नहीं जानती। फिर तुम्हारे उखाड़ने से वह न फलेगी। स्त्री को केश बिखराकर उसे लाना चाहिए। तुम परोपकार में बाधा मत डालो।

कपालकुण्डला ने यह बात कुछ रूखेपन से कही।

नवकुमार ने फिर आपत्ति नहीं की। बोले—अच्छा चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।

कपालकुण्डला ने कुछ गर्व से कहा—चलो। मैं विश्वास योग्य हूँ या नहीं, चलकर अपनी आँखों से देख आओ।

नवकुमार फिर कुछ न कह सके। लम्बी निश्वास फेंक कपालकुण्डला का हाथ छोड़कर घर लौट गये। कपालकुण्डला अकेली वन में घुस गई।

दूसरा परिच्छेद

जंगल के बीच

——"Tender is the night
And happily the Queen moon
is on her throne,
Clustered around by all her starry fays
But here there is no light.
--Keats.

सप्तग्राम के इस भाग में घने जंगल हैं, यह पहले ही कहा जा चुका है। वह गाँव से थोड़ी ही दूर है। कपालकुण्डला अकेली वन की एक संकीर्ण पगडंडी से जड़ी की खोज में चलने लगी। रात्रि आकर्षक थी, एकदम सन्नाटा छाया हुआ था। चैत मास की सुहावनी रात्रि के आकाश में शीतल किरणें छिटकाता चन्द्रमा चुपचाप सफेद बादलों को पार करता चला जा रहा है; भूमि पर जंगली वृक्षलताएँ निस्तब्ध हो शीतल चन्द्र-किरणों में विश्राम कर रही हैं, नीरव वृक्ष-पल्लव उन चन्द्र-रश्मियों से प्रतिधान कर रहे हैं, लताकुंजों में सफेद फूल खामोशी से खिल रहे हैं। पशु-पक्षी नीरव हैं। केवल कहीं विश्राम में विघ्न पड़ने से किसी पक्षी के पंख फड़फड़ाने की आवाज कभी-कभी सुनाई पड़ जाती है, कहीं किसी समय सूखी पत्ती के गिरने का शब्द होता है, कहीं किसी समय जमीन पर पड़ी सूखी पत्तियों में सर्पजातीय जीवों

के रेंगने के शब्द सुनाई पड़ते हैं, कभी बहुत दूर से कुत्तों के भूंकने की आवाज़ भी आ जाती है। ऐसी बात नहीं है कि वायु का वहन: एकदम बन्द हो, चैत मास की मन्दशीतल वायु बह रही है। बहुत ही धीमी गति थी हवा की, एकदम नीरव। उससे केवल वृक्षों की फुनगियों पर की पत्तियाँ हिल रही हैं, जमीन तक झुकी श्यामा-लताएँ केवल हिलती हैं। नीले आकाश में बादलों के छोटे-छोटे खण्ड धीरे-धीरे चले जा रहे हैं। केवल उस वायु के प्रभाव से अतीत के सुखों की अस्पष्ट-सी स्मृति हृदय में कुछ जाग्रत हो रही थी।

कपालकुण्डला के स्मृतिपट पर सारा दृश्य ताजा हो गया। बलुई ढूहों के शिखरों पर घूमते समय समुद्र-जलविन्दुओं का स्पर्श कर बहने वाला मलय-समीर उनके लम्बे केशपुञ्जों में कैसे हिलोरता रहता था, वह याद पड़ गया। निर्मल नील अनन्त आकाश की ओर वह गौर से ताकने लगी, पूर्व-परिचित निर्मल अनन्त नील गगनवत् समुद्र फिर याद हो आया। कपालकुण्डला अतीत की सुखद स्मृति की समालोचना में मग्न कुछ अनमनी-सी हो चलने लगी।

अन्यमनस्क होने के कारण वह किधर किस उद्देश्य से जा रही थी, इसका कुछ ध्यान ही नहीं रहा। धीरे-धीरे किस मार्ग से वह जा रही थी, उसे भ्रम हो गया। ठीक रास्ता समझ में नहीं आ रहा था। वन घना होता गया। सिर पर शाखा-पुंजों से चाँदनी का प्रकाश रुक गया। रास्ता न सुझाई पड़ने से कपालकुण्डला चौंक पड़ी, मानो नींद से एकाएक जाग उठी हो। इधर-उधर गौर करके उसने देखा तो इस घने जंगल में भी उसे प्रकाश जलता दिखाई दिया। लुत्फउन्निसा पहले इसी प्रकाश को देख चुकी थी। कपालकुण्डला को, पहले अभ्यस्त होने के कारण, जरा भी भय नहीं प्रतीत हुआ, कुछ कुतूहल अवश्य था। धीरे-धीरे वह उस दीपक की तरफ चली गई। उसने देखा, जहाँ बत्ती जल रही है, वहाँ कोई नहीं है, किन्तु उससे थोड़ी ही दूर- -घने

जंगल में दूर से न दिखाई पड़नेवाला---एक टूटा-फूटा मकान है। मकान ईंटों से बना है किन्तु अत्यन्त छोटा तथा साधारण है। उसमें एक ही कमरा है। उस कमरे से मनुष्यों की बातचीत की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। कपालकुण्डला चुपके से कदम बढ़ाती उस कमरे के निकट पहुँच गई। दीवार के पास पहुँचते ही जान पड़ा कोई दो व्यक्ति सतर्कता से बातचीत कर रहे हैं। पहले बातचीत जरा भी न समझ सकी। बाद को धीरे-धीरे चेष्टा करने से कान लगाकर सुनने से निम्नलिलित बातें उसे सुनाई दीं।

एक कह रहा था---मैं चाहता हूँ उसकी मृत्यु, इस पर तुम्हारी सहमति यदि न हो तो मैं तुम्हारी सहायता न कर सकूँगा, तुम्हारी सहायता भी फिर मुझे नहीं चाहिए।

दूसरे व्यक्ति ने कहा—मैं भी उसका मंगलाकांक्षी नहीं हूँ, किन्तु उसको आजीवन निर्वासित करने की मेरी इच्छा है। उसकी हत्या का कोई उद्योग मुझसे न होगा, बल्कि उसका मैं विरोध करूँगा।

पहले व्यक्ति ने फिर कहा---तुम अत्यन्त अबोध हो, नादान हो। तुमको मैं कुछ ज्ञान दे रहा हूँ। मन लगाकर सुनो। अति गूढ़ वृत्तान्त सुनाऊँगा। चारो तरफ एक बार जाकर देख आओ। किसी मनुष्य के साँस लेने की आहट आ रही है।

कपालकुण्डला बातचीत अच्छी तरह सुनने के लिए कमरे की दीवाल के अत्यन्त निकट सटी खड़ी थी और उसकी उत्सुकता बहुत बढ़ जाने तथा सशंकित होने के कारण श्वास की गति बढ़ गई थी।

साथी के कहने पर कमरे से एक व्यक्ति बाहर निकला। आते ही उसने कपालकुण्डला को देख लिया। कपालकुण्डला ने भी स्वच्छ चाँदनी में आगन्तुक पुरुष को स्पष्ट रूप से देखा। उसे देखकर वह भयभीत हो या प्रसन्न, कुछ तय न कर सकी। उसने देखा कि आगन्तुक ब्राह्मण वेशधारी है, साधारण धोती पहने शरीर को भली

प्रकार चादर से ढँके है। ब्राह्मण कुमार बहुत ही नई उम्र का है। चेहरे पर अधिक उम्र का चिह्न भी नहीं है। वह परम सुन्दर है, सुन्दरी स्त्री के मुँह की तरह सुन्दर किन्तु स्त्री-दुर्लभ तेज गर्व से परिपूर्ण है। उसके केश साधारणतः पुरुषों के केश की तरह नहीं हैं, स्त्रियों की भाँति उसकी चादर पीठ पर, कँधे पर, बाहों और कुछ छाती के ऊपर अच्छी तरह से फैली हुई है। ललाट चौड़ा, प्रशस्त है, उसके मध्य भाग में एक शिरा उभरी हुई शोभा दे रही है। दोनो आँखें बिजली की तरह चमक रही हैं। एक लम्बी नंगी तलवार हाथ में थी। किन्तु इस सौन्दर्य-राशि से एक भीषण भाव टपक रहा था। उस सुनहले रंग पर मानो किसी कराल कामना की काली छाया पड़ गई हो। अन्तस्तल की गहराई तक पहुंचने में समर्थ कटाक्ष देखकर कपालकुण्डला सहम गई।

दोनो एक दूसरे की ओर थोड़ी देर तक एकटक ताकते रहे फिर कपालकुण्डला ने अपनी पलकें गिरा दीं। पलक गिराते ही ब्राह्मण ने उससे पूछा—तुम कौन हो ?

यदि एक वर्ष पहले हिजली के केवड़े के वन में किसी ने कपाल-कुण्डला से यह प्रश्न किया होता, तो वह तत्क्षण उसका समुचित उत्तर देती, किन्तु अब कपालकुण्डला कुछ हद तक गृहस्थ महिलाओं के स्वभाव को अपना चुकी थी, इस कारण एकाएक उत्तर न दे सकी। ब्राह्मण कपालकुण्डला को निरुत्तर देखकर गम्भीरता के साथ बोला—कपालकुण्डला! तुम रात के समय इस घने जंगल में किस लिए आई हो ?

रात में विचरनेवाले अपरिचित पुरुष के मुँह से अपना नाम सुन कपालकुण्डला अवाक् रह गई, कुछ डरी भी। एकाएक कोई भी उत्तर उसके मुंह से नहीं निकला।

ब्राह्मण ने फिर पूछा—तुमने हमारी बातचीत सुन ली है ?

सहसा कपालकुण्डला की वाक्शक्ति पुनः लौट आई। उसने उत्तर न देकर पूछा—मैं भी यही पूछती हूं, इस वन में तुम दोनो अर्धरात्रि में क्या षड़यंत्र कर रहे थे ? छद्मवेशी ब्राह्मण कुछ देर तक निरुत्तर सोचता रहा। मानो कार्यसिद्धि का कोई नया उपाय उसके मन में सुझाई दे गया। कपालकुण्डला का हाथ पकड़ वह उसे टूटे-फूटे मकान से कुछ दूर ले जाने लगा। कपालकुण्डला ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हाथ छुड़ा लिया। ब्राह्मण वेशधारी ने बहुत ही धीमी आवाज में कपाल-कुण्डला के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—चिन्ता क्या है ? मैं पुरुष नहीं हूँ।

कपालकुण्डला और भी चौंकी। उसकी बात पर उसे कुछ विश्वास तो हुआ फिर भी पूरा विश्वास नहीं जमा। वह साथ-साथ चलने लगी। मकान से न दिखाई पड़नेवाले स्थान में पहुँचकर ब्राह्मण-वेशधारी ने कपालकुण्डला के कानों में कहा—हम लोग जो परामर्श कर रहे थे, उसे तुम सुनोगी ? वह तुम्हारे ही सम्बन्ध में है।

कपालकुण्डला का भय तथा आतुरता अत्यन्त बढ़ गई, बोली—सुनूंगी।

छद्मवेशधारी ने कहा—तो जब तक मैं लौटकर न आऊँ, तब तक यहीं प्रतीक्षा करो।

इतना कहकर छद्मवेशी टूटे-फूटे मकान में लौट आया। कपाल-कुण्डला कुछ देर तक वहीं बैठी रही। किन्तु उसने जो कुछ देखा-सुना था, उससे उसका मन भय से व्याकुल हो गया था। अब अकेले अँधेरे जंगल में बैठे रहने से भय और भी बढ़ने लगा। विशेषतः यह छद्म वेशधारी उसको किस प्रयोजन से वहाँ बैठाकर चला गया, यह कौन जानता है ? सम्भवतः सुयोग पाकर अपना असत् अभिप्राय सिद्ध करने की नीयत से ही बैठा गया है। ऐसा विचार आते ही कपालकुण्डला भय से विह्वल हो गई। इधर ब्राह्मण वेशधारी के लौटने में विलम्ब

होने लगा। कपालकुण्डला अब और बैठी न रह सकी। उठकर तेज कदम बढ़ाती हुई घर की ओर चल पड़ी।

आकाशमण्डल घने बादलों के कारण अंधकारमय होने लगा था, जंगल में जो मामूली उजाला था, वह भी लुप्त होने लगा। कपालकुण्डला अब जरा भी विलम्ब न कर सकी। तेज कदमों से जंगल के बाहर जाने लगी। जाते समय उसे अपने पीछे किसी दूसरे व्यक्ति के चलने की आहट मालूम पड़ रही थी। किन्तु मुँह फेरकर देखने पर अंधेरे में उसे कुछ भी न दिखाई दिया। कपालकुण्डला ने सोचा, शायद वही ब्राह्मण उसके पीछे-पीछे आ रहा है। जंगल से निकल वह पहले कही हुई छोटी पगडंडी पर पहुंच गई। वहाँ उतनी अंधियारी नहीं थी। सामने कोई मनुष्य होने से दिखाई पड़ सकता था। किन्तु कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। इसलिए तेज कदमों से वह चलने लगी। किन्तु फिर स्पष्ट मनुष्य के चलने की आहट उसे मिली। आकाश काले बादलों से और भी डरावना हो गया। कपालकुण्डला की गति और तेज हो गई। मकान निकट ही था, किन्तु आँधी-पानी भीषण कड़क और गर्जन के साथ आ गया। कपालकुण्डला दौड़ने लगी। पीछे जो आ रहा था, वह भी मानो दौड़ने लगा। मकान दिखाई पड़ने के पहले ही प्रचण्ड आँधी-पानी ने कपालकुण्डला को सिर से पैर तक सराबोर कर दिया। बराबर बादलों की गर्जना और बिजली कड़कने के शब्द होने लगे। बार-बार बिजली चमकने लगी। मूसलाधार पानी बरसने लगा। कपालकुण्डला किसी तरह बचकर घर पहुँची। आँगन पारकर अपने कमरे में घुस गई। उसके लिए दरवाजा खुला था। दरवाजा बन्द करने के लिए आँगन की तरफ मुँह घुमाया। सामने आँगन में एक लम्बे कद का पुरुष खड़ा दिखाई दिया। उसी समय एक बार बिजली चमकी। उसके प्रकाश में कपालकुण्डला उसे पहचान गई। वह था समुद्रतट-निवासी वही कापालिक।

तीसरा परिच्छेद

स्वप्न में

"I had a dream, which was not at all a dream."
—Byron.

कपालकुंडला ने धीरे-धीरे दरवाजा बन्द कर दिया। धीरे-धीरे वह अपने शयनकक्ष में जाकर पलँग पर लेट गई। मनुष्य-हृदय अनन्त समुद्रवत् है। जब समुद्र पर वायु प्रचण्ड वेग से युद्ध करने लगती है, तब उसकी तरंगमालाओं को कौन गिन सकता है। कपालकुण्डला के हृदय-समुद्र में जो तरंगमालाएँ उठ रही थीं, उनकी गणना कौन कर सकता है? उस रात को नवकुमार हार्दिक व्यथा के कारण अन्तःपुर में नहीं आये। शयनकक्ष में अकेली कपालकुण्डला लेटी रही, किन्तु नींद नहीं आई। प्रवल वायु के झकोरों-सहित वर्षा की जलधारा से भीगा हुआ केशों की लटों से घिरा वह मुखमण्डल अँधेरे में चारो तरफ दीखने लगा। कपालकुण्डला पहले की सभी घटनाओं पर आलोचना करने लगी, कापालिक के साथ जो व्यवहार कर वह भाग आई थी, उसे याद आने लगा; कापालिक घने जंगल में जो सब पैशाचिक कार्य किया करता था, वे सब याद आने लगे; उसकी भैरवी पूजा, नवकुमार का बन्धन, सभी याद पड़ गये। कपालकुण्डला सिहर उठी। आज की अँधेरी रात की सभी घटनाएँ एक-एक आँखों के सामने घूम गईं। श्यामा की जड़ी के लिए कामना, नवकुमार का मना करना, उनके प्रति कपालकुण्डला का तिरस्कार, उसके बाद जंगल की ज्योत्स्नामयी वन-तल की शोभा, घना अन्धकार, वन के नये सहचर उस छद्मवेशी ब्राह्मण का अनेक गुणसम्पन्न किन्तु कराल स्वरूप, सभी उसे याद आने लगे।

पूर्व दिशा में ऊषा की मुकुट-ज्योति झलकने लगी। तब कपालकुण्डला

को जरा तन्द्रा ने आ घेरा। उस अर्धनिद्रा में कपालकुण्डला सपना देखने लगी। देखने लगी, मानो उस पूर्वपरिचित सागर के वक्ष पर नाव पर चढ़ी चली जा रही है। नाव सजी हुई है; उस पर वसन्ती पताका फहरा रही है। नाविक फूलों के गजरे गले में पहने नाव खे रहे हैं; राधेश्याम के अनन्त प्रेमगीत गा-गाकर मस्त हो रहे हैं। पश्चिमी आकाश से सूर्य की स्वर्णिम धाराएँ दूर-दूर तक फैल रही हैं। सुनहली धारा के साज से समुद्र विहँस रहा है, मानो नभ-मण्डल में मेघखण्ड उस सुनहली वृष्टि में दौड़-दौड़कर स्नान कर रहे हैं। अकस्मात् मालूम हुआ जैसे रात हो गई हो। सूर्य न जाने कहाँ गायब हो गया। सुनहले बादल कहाँ उड़ गये। घने नीले बादल आकर आकाश में छा गये। समुद्र में दिशाएँ पहचानने में भ्रम होने लगा। नाविकों ने नाव को लौटाया! किस तरफ खेकर ले जायँ समझ में नहीं आता, उन्होंने गाना बन्द कर दिया, गजरे तोड़कर समुद्र में फेंक दिये। वसन्ती रंग की पताका आप ही खिसककर जल में गिर गई। तूफान उठा, पेड़ों-सी ऊँची-ऊँची लहरें उछाल मारने लगीं। लहरों के बीच से एक जटाजूटधारी दीर्घकाय पुरुष निकलकर कपालकुण्डला की नाव को बायें हाथ से उठा समुद्र में फेंकने को उद्यत हो गया। ऐसे समय वह भीषण किन्तु छवियुक्त ब्राह्मण वेशवाले ने आकर नाव पकड़ ली। उसने कपालकुण्डला से पूछा—तुझे रखूँ या डुबो दूँ? अकस्मात् कपालकुण्डला के मुँह से निकल पड़ा—डुबो दो। ब्राह्मण ने नाव को छोड़ दिया। तब नाव भी शब्दमयी हो गई। वह बोली—मैं अब यह भार ढो नहीं सकती, मैं पाताल में जा रही हूँ। यह कहकर मानो नाव उसे जल में फेंक पाताल में प्रवेश कर गई।

कपालकुण्डला का शरीर पसीने से लथपथ हो गया। एकाएक सपना टूट गया। आँखें खोलीं। देखा, प्रभात हो गया है। कमरे की खिड़की खुली हुई है, उसमें से वसन्ती वायु भीतर आ रही है। धीरे-

धीरे हिलती हुई वृक्षों की डालियों पर चिड़ियाँ चहचहा रही हैं। उन झरोखों पर कुछ मानोहर जंगली लताएँ सुगन्धित फूलों से लदी झूम रही हैं। कपालकुण्डला नारीसुलभ स्वभाव से उठकर लताओं को सरियाने लगी, उन्हें व्यवस्थित रीति से बाँधते-बाँधते उसके भीतर से एक चिट्ठी निकलकर गिर पड़ी। कपालकुण्डला पुजारी की छात्रा थी, पढ़ना भली प्रकार जानती थी, पत्र का आशय निम्न प्रकार था—

आज सन्ध्या के बाद कल रात को जिस ब्राह्मण-कुमार से भेंट हुई थी, उससे फिर भेंट करना। अपने सम्बन्ध में अत्यन्त रहस्यपूर्ण एवं आवश्यक जो बात सुनना चाहती थी, उसे सुन जाना :—अहं ब्राह्मण वेशधारी।

चौथा परिच्छेद

संकेतानुसार

"—I will have grounds, more relative than this."

—Hamlet.

कपालकुण्डला उस दिन सन्ध्या तक अन्य किसी विषय की चिन्ता छोड़ केवल यही सोचती रही कि उसे छद्मवेशी ब्राह्मण के साथ एकाकी भेंट करना उचित है या नहीं। पतिव्रता युवती के लिए रात के समय एकान्त में अपरिचित पुरुष के साथ भेंट करना अनुचित है, इस भाव से उसके मन में हिचकिचाहट नहीं थी। इस सम्बन्ध में उसका निश्चित मत था कि भेंट का उद्देश्य दूषित न होने से ऐसी भेंट में कोई अपराध नहीं होता--पुरुष के साथ पुरुष और स्त्री के साथ स्त्री के मिलने का जैसा अधिकार है, स्त्री-पुरुष के परस्पर मिलने का वैसा

ही अधिकार होना सर्वथा उचित है, ऐसी उसकी धारणा थी। विशेषतः उस ब्राह्मण के पुरुष होने में भी उसे पूरा सन्देह था। इसलिए वह संकोच निरर्थक था। किन्तु इस भेंट से कल्याण होगा या अकल्याण, यह अनिश्चित होने के कारण कपालकुण्डला इतना सोच में पड़ी थी। पहले ब्राह्मण वेशधारी से बातचीत, बाद को कापालिक का दिखाई देना, उसके बाद रात का सपना, इन कारणों से कपालकुण्डला के हृदय में अपने सम्बन्ध में बड़ा भय उत्पन्न हो गया था। अपने अमंगल की आशंका से वह अनिश्शंकित हो गई थी।

यह अमंगल कापालिक के आगमन से संबद्ध है, इसलिए आशंका और भी पुष्ट है। यह ब्राह्मण वेशधारी भी उसी का साथी मालूम होता है—इसलिए उससे भेंट करना भी खतरे से ख़ाली नहीं है। उसने तो स्पष्ट स्वीकार भी किया है कि कपालकुण्डला के ही सम्बन्ध में बातचीत हो रही थी। किन्तु यह भी तो हो सकता है कि उससे मिलने से उस भारी संकट से बचने की सूचना मिल जाय। ब्राह्मण किसी व्यक्ति के साथ गुप्त परामर्श कर रहा था, वह व्यक्ति यही कापालिक मालूम होता है। वार्तालाप में किसी की मृत्यु का संकल्प प्रकट हो रहा था, कम से कम आजीवन निर्वासन। किसका निर्वासन ! ब्राह्मण वेशधारी ने तो स्पष्ट ही बताया है कि कपालकुण्डला के ही सम्बन्ध में वह कुपरामर्श चल रहा था। उसकी ही मृत्यु या उसे ही आजीवन निर्वासित करने की बात सोची जा रही थी। तो जब इन सब भयंकर षड़यन्त्रों में उस छद्मवेशी ब्राह्मण का प्रत्यक्ष हाथ है, तब उसके पास रात के समय अकेले दुर्गम वन में जाना केवल विपत्तिमूलक ही हो सकता है। किन्तु कल रात मैंने जो सपना देखा था, वह सपना—उस सपने का क्या अर्थ है ? सपने में उसी ब्राह्मण ने महा-विपत्ति के समय आकर उसकी रक्षा करनी चाही थी, प्रत्यक्ष भी ऐसा ही प्रकट हो रहा है। ब्राह्मण वेशधारी सब बता देना चाहते हैं।

उसने सपने में ब्राह्मण से कहा था—"डुबा दो", आज भी क्या वह उससे मिलने पर वैसा ही कहेगी ? ब्राह्मण की सहायता छोड़कर क्या विपत्ति-सागर में डूब जायगी ? नहीं ! नहीं ! भक्तवत्सला भवानी ने कृपा-पूर्वक उसकी रक्षा के लिए ब्राह्मण वेशधारी को भेजा है। वह निश्चय उसका उद्धार करना चाहते हैं, उनकी सहायता त्याग देने से डूब जाऊँगी। इसलिए कपालकुण्डला ने उसके साथ भेंट करने की ठान ली। कोई विद्वान व्यक्ति ऐसा निश्चय करता या नहीं, कहना कठिन है, किन्तु विद्वानों के सिद्धान्तों से हमारा सम्बन्ध नहीं है। कपाल-कुण्डला विशेष विज्ञ नहीं थी, इस कारण अनुभवपूत विद्वान् की भाँति उसने निर्णय नहीं किया। कौतूहल में पड़ी स्त्री की तरह उसने अपना मार्ग निश्चित किया, भयंकरता से ओत-प्रोत उस सुन्दर युवा को देखने के लिए उत्सुक एक युवती की तरह निश्चित किया, रात के समय वन में विचरनेवाली कापालिक-पालिता बालिका की तरह उसने विचार स्थिर किया, भवानी की भक्ति से मोहित स्त्री की तरह विचार स्थिर किया, ज्वलन्त अग्निशिखा में पतनोन्मुख पतङ्ग की तरह निश्चय किया।

सन्ध्या के बाद घरेलू काम-धंधों से निपटकर कपालकुण्डला पहले की तरह जंगल की ओर चल पड़ी। जाते समय कपालकुण्डला ने शयनकक्ष में बत्ती को उकसाकर कुछ तेज कर दिया था। कमरे से बाहर निकलते ही वह बत्ती बुझ गई।

जाते समय कपालकुण्डला एक बात भूल गई कि पत्र में ब्राह्मण ने किस स्थान पर भेंट करने को लिखा था, इस कारण फिर चिट्ठी पढ़ने की जरूरत पड़ गई। कमरे में लौटकर जिस जगह सवेरे चिट्ठी उसने रख दी थी, वहीं ढूंढने लगी, उस जगह चिट्ठी उसे नहीं मिली। उसे याद पड़ा कि बाल बाँधते समय उस पत्र को साथ रखने के इरादे से चोटी में उसने छिपा लिया था। इसलिए चोटी में अँगुली से

ढूंढने लगी। चिट्ठी का स्पर्श न होने से चोटी को खोल डाला, तो भी वह चिट्ठी उसे नहीं मिली, तब घर के अन्य स्थानों में खोजने लगी। कहीं भी न मिलने पर, प्रथम मिलन के ही स्थान में भेंट करने का विचारकर वह फिर चल पड़ी। हड़बड़ी में वह अपने लम्बे केशपुंजों को फिर से बाँध न सकी, इस कारण आज कपालकुण्डला अनूढ़ाकाल की जैसी केशमण्डल-मध्यवर्त्तिनी होकर चली।

पाँचवाँ परिच्छेद

गृहद्वार पर

Stand you a while apait;
"Confine yourself but in a patient list."
—Othelo.

शाम होने के ठीक पहले जिस समय कपालकुण्डला अपने घरेलू काम-धंधों में व्यस्त थी, उसी समय वह चिट्ठी खिसककर जमीन पर गिर पड़ी थी। कपालकुण्डला इसे जान न पाई थी। नवकुमार ने उसे देख लिया था। जूड़े से पत्र गिरते देखकर नवकुमार चौकन्ने हुए। जब कपालकुण्डला वहाँ से किसी काम के लिए गई, तब उन्होंने चिट्ठी उठा बाहर ले जाकर उसे पढ़ा। उसे पढ़कर क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है? जिस बात को तुमने कल सुनना चाहा था, वही आज आने पर सुनोगी, यह है क्या? प्रेमालाप! यह ब्राह्मण वेशधारी क्या मृण्मयी का उपपति है? जिस व्यक्ति को पूर्व-रात्रि का सही हाल मालूम नहीं है, उसके लिए दूसरा निष्कर्ष निकालना सम्भव भी नहीं।

जब कोई सती स्त्री मृत पति का शव लेकर चिता पर चढ़ जाती

है अथवा किसी अन्य कारण से जब कोई जीवित ही अग्नि में प्रवेश करती है, और जब उस चिता में आग लगती है, तब पहले धुएँ का पुंज उसे चारो ओर से घेर लेता है, कुछ भी उसमें सुझाई नहीं पड़ता, घना अंधेरा छा जाता है, थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे जब लकड़ियों का ढेर जल उठता है, तब पहले नीचे से सर्पजिह्वा की तरह दो-चार लपटें आकर शरीर के विभिन्न अंगों को झुलसाने लगती हैं, बाद को फुफकार मारती हुई अग्नि-ज्वाला चारो ओर से आकर उसे घेर लेती है, लपटें अंग-प्रत्यङ्ग पर फैलने लगती हैं, अन्त में भयंकर शब्द के साथ अग्निराशि—आकाशमण्डल को अपने प्रकाश से व्याप्त करती हुई शिर तक पहुँचकर सारे शरीर को राख का ढेर बना डालती है।

चिट्ठी पढ़कर नवकुमार की वही दशा हुई। पहले वे कुछ समझ न सके। उसके बाद सन्देह उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे वह सन्देह दृढ़ होने लगा, अन्त में शरीर क्रोध से जलने लगा। मनुष्य-हृदय के लिए विकट दुःख अथवा अधिक सुख एक ही साथ ग्रहण करना शक्य नहीं है, वह उसे धीरे-धीरे ग्रहण करता है। नवकुमार को पहले धुएँ ने घेरा, बाद को अग्निशिखा मानो हृदय को जलाने लगी, फिर उस ज्वाला में जलकर हृदय राख होने लगा। कुछ दिन से नवकुमार बराबर देख रहे थे कि कपालकुण्डला प्रायः उनका कहना नहीं मानती थी। खासकर उनके मना करने पर भी, कपालकुण्डला जहाँ उन्हें जाने की इच्छा होती थी, वहाँ अकेली ही चली जाती थी, जिसके-तिसके साथ अपनी स्वेच्छानुसार आचरण करती थी; इसके अतिरिक्त उनका आदेश टालकर रात को अकेली जंगल में घूमने तक चली जाती थी। दूसरा कोई होता तो इस स्थिति में बहुत पहले ही सन्देह करने लगता, किंतु नवकुमार के हृदय में कपालकुण्डला पर रंचमात्र भी सन्देह उठने पर न रुकनेवाले बिच्छू के डंक की भाँति जलन होती

थी, इसलिए वे एक दिन भी मन में उसके प्रति सन्देह को ठहरने नहीं देते थे। किन्तु अब आज सन्देह का तो प्रश्न ही नहीं। प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता ?

यंत्रणा का प्रथम वेग शान्त होने पर नवकुमार चुपचाप बैठे बड़ी देर तक रोते रहे। खूब रो चुकने पर कुछ सुस्थिर हुए। तब उन्होंने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। आज वे कपालकुण्डला से कुछ भी न कहेंगे। कपालकुण्डला जब सन्ध्या के बाद जंगल की तरफ जाने लगेगी, तब छिपे तौर पर उसका पीछा करेंगे, उसका महापाप अपनी आँखों देखेंगे, उसके बाद अपना यह जीवन विसर्जित कर देंगे। कपाल-कुण्डला से कुछ भी न कहेंगे, स्वयं आत्महत्या कर लेंगे। फिर जी कर भी क्या करेंगे ? भारस्वरूप इस जीवन को ढोने की शक्ति उनमें न रहेगी।

यह निश्चय कर वे कपालकुण्डला के बाहर जाने की प्रतीक्षा में खिड़कीवाले दरवाजे की तरफ मुँह किये बैठे रहे। कपालकुण्डला घर से निकलकर कुछ ही दूर गई होगी कि नवकुमार भी उठकर चलने लगे। इतने ही में कपालकुण्डला को चिट्ठी के लिए लौटते देख नवकुमार भी हटकर आड़ में छिप गये। अन्त में कपालकुण्डला जब फिर घर से निकलकर कुछ दूर चली गई, तब नवकुमार फिर उसका पीछा करने के लिए बाहर निकलने लगे। किन्तु उन्होंने देखा कि दरवाजे को रोककर एक दीर्घाकार पुरुष खड़ा है।

वह व्यक्ति कौन है, क्यों खड़ा है, यह जानने की जरा भी इच्छा नवकुमार को नहीं हुई—उसकी तरफ उन्होंने नजर उठाकर ताका भी नहीं। केवल कपालकुण्डला पर वे निगाह जमाये थे, इसलिए रास्ता साफ करने के लिए उन्होंने उस व्यक्ति पर हाथ रखकर उसे बगल कर देना चाहा किन्तु उसे वे हटा न सके।

नवकुमार ने पूछा—कौन हो तुम ? हट जाओ—मेरा रास्ता छोड़ो।

आगन्तुक बोला—मैं कौन हूँ, तुम क्या पहचानते नहीं ? शब्द समुद्रगर्जना की तरह कानों में गूंज उठा। नवकुमार ने गौर से देखा तो मालूम हुआ कि वह वही पूर्वपरिचित जटाधारी कापालिक है।

नवकुमार चौंक पड़े, किन्तु वे डरे नहीं। एकाएक उनका चेहरा खिल गया। उन्होंने पूछा—कपालकुण्डला क्या तुमसे भेंट करने जा रही है ?

कापालिक ने कहा—नहीं।

जलने के साथ ही दीपक के बुझ जाने की भाँति नवकुमार का चेहरा खिलकर फिर पहले की ही तरह म्लान हो गया। उन्होंने कहा—तो तुम रास्ता छोड़ दो।

कापालिक ने कहा—रास्ता मैं छोड़े दे रहा हूँ, किन्तु तुम्हारे साथ मुझे कुछ बातें करनी हैं—पहले उन्हें सुन लो।

नवकुमार ने कहा—तुम्हारे साथ मेरी बातचीत कैसी ? तुम फिर मेरे प्राण लेने आये हो ? प्राण तुम ले लो, मैं इस बार कोई आपत्ति न करूँगा, किन्तु जरा देर प्रतीक्षा करो, मैं अभी आ रहा हूँ। क्यों मैंने देवता को सन्तुष्ट करने के लिए उस समय अपना शरीर नहीं दिया ? अब उसी का फल भोग रहा हूँ। जिसने उस दिन मेरी रक्षा की थी, आज उसी ने मेरा सर्वनाश कर दिया। कापालिक, इस बार मुझ पर अविश्वास मत करो। मैं इसी पल आकर तुमको आत्मसमर्पण कर दूंगा।

कापालिक ने कहा—मैं तुम्हारा वध करने के लिए नहीं आया हूँ। भवानी की ऐसी इच्छा नहीं है। मैं जो काम करने आया हूँ, उसका तुम अनुमोदन करोगे, ऐसा मेरा विश्वास है। मकान के भीतर चलो, मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो।

नवकुमार बोले—अभी नहीं, लौटकर सुनूँगा। तुम अभी जरा प्रतीक्षा करो, मुझे विशेष काम है, उसे पूरा करके आ रहा हूं।

कापालिक ने फिर कहा—बेटा ! मैं सब कुछ जानता हूं, तुम उस पापिष्ठा का पीछा कर रहे हो। वह जहां जायगी, इसे मैं जानता हूं। मैं तुमको उस जगह अपने साथ ले चलूंगा। तुम जो देखना चाहते हो वह भी दिखाऊँगा—पहले तुम मेरी बात सुन लो। किसी तरह का भय मत करो।

नवकुमार ने कहा—अब तुमसे मुझे कोई भय नहीं है, चलो।

यह कहकर नवकुमार ने कापालिक को मकान के अन्दर ले जा कर आदर-सहित बैठाया और स्वयं बैठकर बोले—कहो।

छठा परिच्छेद

पूर्व वृत्तान्त

"तद्गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यम्।"

—कुमार संभव

कापालिक ने बैठकर अपनी दोनो बाँहें नवकुमार को दिखाई। नवकुमार ने देखा—दोनो बाहें टूटी हुई हैं।

पाठकों को याद होगा कि जिस रात कपालकुण्डला के साथ नवकुमार समुद्रतट से भागे थे, उसी रात उन्हें ढूंढ़ते समय कापालिक बलुई ढूह के शिखर से लुढ़ककर गिर पड़ा था। गिरते समय दोनो हाथ जमीन पर टेककर अपना शरीर बचाने की भरसक चेष्टा उसने की। शरीर-रक्षा तो हुई किन्तु उसके दोनो हाथ टूट गये। कापालिक ने सारा हाल नवकुमार को सुनाकर कहा—बाहों के टूटने से नित्य क्रिया के निर्वाह में कोई विशेष विघ्न नहीं होता, किन्तु इनमें बल अब ज़रा भी नहीं है। यहां तक कि इनसे लकड़ी लाने में भी कष्ट होता है।

फिर कहने लगा—जमीन पर गिरते ही मैं जान गया था कि मेरे दोनो हाथ टूट गये हैं, दूसरे अंग नहीं टूटे हैं। गिरते ही मैं मूर्च्छित हो गया था। पहले मैं एकदम अचेत पड़ा था। वाद को थोड़ी देरतक अर्धचेतनावस्था रही। मैं कितनी देर इस अवस्था में रहा, ठीक याद नहीं है। शायद दो रात, एक दिन ऐसे ही रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल मैं फिर पूरे होश में आ गया। उसके थोड़ी ही देर पहले मैं एक सपना देख रहा था। "मानो भवानी"—कहते-कहते कापालिक का शरीर रोमाञ्चित हो गया—"मानो भवानी मेरे सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट हुई हैं। भौंहें तरेर कर मुझे झिड़क रही हैं। कह रही हैं—'अरे दुराचारी! तेरा ही चित्त अशुद्ध होने के कारण मेरी पूजा में यह विघ्न आ उपस्थित हुआ। तूने इन्द्रिय-लालसा में लिप्त होने के कारण इस कुमारी के रक्त से इतने दिन तक मेरी पूजा नहीं की। इस कारण इसी कुमारी के द्वारा तेरे पहले के कर्मों का सारा फल नष्ट हो गया। मैं तेरे हाथ की पूजा अव कभी ग्रहण न करूँगी।" तव मैं रोता हुआ माता के चरणों पर गिर पड़ा। तव प्रसन्न होकर फिर उन्होंने कहा—भद्र! इसका एकमात्र प्रायश्चित्त मैं वता रही हूँ। उस कपालकुण्डला को मेरे पास लाकर उसकी वलि चढ़ा दे। जितने दिन तू यह न कर सके, मेरी पूजा न करना।

कितने दिनों में अथवा किस प्रकार मैं रोगमुक्त हुआ, उसका वर्णन करने की जरूरत नहीं है। कुछ समय वीतने पर रोगमुक्त होकर मैं देवी की आज्ञा पूरी करने की चेष्टा में लग गया, किन्तु मैंने देखा कि इन दोनो बाहों में छोटे वच्चे का वल भी नहीं है। वाहुवल के अभाव में कोई चेष्टा सफल नहीं हो सकती। इस कारण मुझे सदा एक साथी की आवश्यकता पड़ गई। किन्तु मनुष्य-समाज की धर्म में मति अल्प है—विशेषतः कलि की प्रवलता में आज यवन राजा है, पापी राजसत्ता के भय से कोई भी ऐसे शुभ कार्य में किसी का साथी नहीं

होगा। बहुत खोज-पूछ के बाद मैं उस पापिष्ठा का निवासस्थान जान पाया हूँ। किन्तु बाहुबल के अभाव में मैं भवानी की आज्ञा का पालन न कर सका। केवल मानस-सिद्धि के निमित्त तन्त्र के विधान के अनुसार जप-होम मात्र करता हूँ। कल रात को निकटस्थ वन में मैं होम कर रहा था। अपनी ही आँखों से मैंने देखा कि कपालकुण्डला ने एक ब्राह्मण-कुमार के साथ भेंट की। आज भी वह उसी से भेंट करने जा रही है। देखना चाहते हो, तो मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें सब दिखाऊँ। वत्स! कपालकुण्डला वध के योग्य है—मैं भवानी की आज्ञानुसार उसका वध करूंगा। वह तुम्हारे प्रति भी विश्वासघातिनी है—तुम्हारे लिए भी वह वध के ही योग्य है, इस कारण तुम मुझे इसमें वह सहायता प्रदान करो। इस अविश्वासिनी को पकड़कर मेरे पूजा-स्थान पर ले चलो। वहाँ अपने हाथों से इसकी बलि चढ़ाओ। ऐसा करने से देवी के प्रति जो अपराध किया है, उसका भी प्रायश्चित्त हो जायगा, इस पवित्र कर्म से अक्षय पुण्य का संचय होगा, विश्वास-घातिनी को दण्ड मिलेगा, प्रतिशोध पूरा हो जायगा।

कापालिक ने अपना वक्तव्य समाप्त किया। नवकुमार ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। कापालिक ने उनको चुप देखकर कहा—बेटा! अब जो दिखाने के लिए मैंने कहा था, वह देखने के लिए मेरे साथ चलो।

नवकुमार पसीने से लथपथ हो कापालिक के साथ चल पड़े।

सातवाँ परिच्छेद

सौत से बातचीत

"Be at peace; it is your sister that
addresses you. Requite Lucretia's love."

—Lucretia.

कपालकुण्डला घर से निकलकर घने जंगल में घुस गई, पहले वह

उस टूटे मकान में पहुँची। वहाँ उसने उस ब्राह्मण को बैठे पाया। यदि दिन का समय होता तो वह देख लेती कि उसका चेहरा बहुत मलिन हो गया है। ब्राह्मण-वेशधारी ने कपालकुण्डला से कहा, यहाँ कापालिक आ सकता है, यहाँ कोई वार्तालाप करना अनुचित होगा; चलो दूसरी जगह चलें। वन में एक जगह छोटा-सा मैदान था, उसके चारो तरफ वृक्षों की भरमार थी, बीच की जगह साफ थी। वहाँ से एक रास्ता निकला था। ब्राह्मण-वेशधारी कपालकुण्डला को लेकर वहाँ गया। दोनो के बैठ जाने पर ब्राह्मण ने कहा--पहले मैं अपना परिचय दे दूं। मेरी बातें किस हद तक विश्वसनीय हैं, इस पर तुम स्वयं विचार कर लोगी। जब तुम पति के साथ हिजली प्रदेश से चली आ रही थीं, तब रास्ते में रात के समय एक यवन-कन्या से तुम्हारी भेंट हुई थी। कुछ याद आ रहा है ?

कपालकुण्डला आश्चर्य से बोली--जिन्होंने मुझे गहने दिये थे ?

ब्राह्मण ने कहा--मैं वही हूँ।

कपालकुण्डला अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गई। लुत्फउन्निसा ने उसका आश्चर्य देखकर कहा--और भी एक आश्चर्य की बात है--मैं तुम्हारी सौत हूँ।

कपालकुण्डला ने चौंककर कहा--वह कैसे ?

लुत्फउन्निसा तब शुरू से अपना परिचय देने लगी। विवाह, जाति-भ्रष्ट होना, पति द्वारा त्याग, ढाका, आगरा, जहाँगीर, मेहरुउन्निसा, आगरा-त्याग, सप्तग्राम में रहना, नवकुमार से भेंट, नवकुमार का व्यवहार, पिछले दिन संध्या को वेश बदलकर वन में आना, होम करनेवाले व्यक्ति से भेंट--पूरा वृतान्त कह सुनाया। सब सुनकर कपालकुण्डला ने पूछा--तुमने किस उद्देश्य से छद्मवेश से हमारे मकान में आने की इच्छा की थी ?

लुत्फउन्निसा ने कहा--तुमसे तुम्हारे पति का चिरविच्छेद करा देने की नीयत से !

कपालकुण्डला सोचने लगी। फिर पूछा—इस काम को तुम किस तरह पूरा करतीं ?

लुत्फउन्निसा—फ़िलहाल किसी प्रकार तुम्हारे पति के मन में तुम्हारे सतीत्व के प्रति सन्देह पैदा कर देती। किन्तु उसकी अब जरूरत नहीं है, उस मार्ग को मैं छोड़ चुकी हूँ। अब यदि तुम मेरे परामर्श के अनुसार काम करो, तो तुम्हीं से मेरी कामना पूरी हो जायगी। साथ-साथ तुम्हारा कल्याण भी होगा।

कपा०—होमकारी के मुँह से तुमने किसका नाम सुना था ?

लु०—तुम्हारा ही नाम। वे तुम्हारे लिए हितकर या अहितकर किस कामना से होम कर रहे हैं, यह जानने के लिए मैं प्रणाम करके उनके पास जाकर बैठ गई थी। जब तक उनकी होम-क्रिया समाप्त नहीं हुई, तब तक मैं वहीं बैठी रही। होम हो जाने पर होम-मंत्र के साथ तुम्हारा नाम लेने का अभिप्राय मैंने बहाने से पूछा। थोड़ी देर तक उनसे बातचीत करके मैं जान गई कि तुम्हारा अकल्याण करना ही उनके होम का प्रयोजन है। मेरा भी वही उद्देश्य है, यह भी मैंने उन को बता दिया। उसी समय दोनो परस्पर सहायता देने को वचनबद्ध हो गये। विशेष परामर्श के लिए वे मुझे उस टूटे-फूटे मकान में ले गये। वहाँ उन्होंने अपने मन का अभिप्राय मुझे बताया। तुम्हारी मृत्यु ही उनका अभीष्ट है। उससे मेरी कोई भलाई नहीं। मैंने इस जन्म में कम पाप नहीं किया है; किन्तु पाप के मार्ग में मेरा इतना अधःपतन नहीं हुआ है कि मैं निरपराध बालिका की मृत्यु का सामान सजाऊँ। मैंने उसमें अपनी सहमति नहीं दी। उसी समय तुम वहाँ पहुँच गई थीं। मुमकिन है तुमने भी कुछ सुना हो।

कपा०—मैंने भी उसी तरह का तर्क-वितर्क सुना था।

लु०—उस व्यक्ति ने मुझे नासमझ (अबोध) समझकर कुछ विशे उपदेश देना चाहा। अन्तिम निर्णय क्या होगा, यह पता लगाकर तुमको सही खबर देने के लिए ही मैं तुमको जंगल में, आड़ में, बैठा गई थी।

कपा०—उसके बाद तुम फिर लौटकर क्यों नहीं आईं ?

लु०—उन्होंने बहुत-सी बातें, विस्तार से कहने में बहुत समय लगा दिया। तुम उस व्यक्ति को अच्छी तरह जानती हो। वह कौन है, कुछ समझ पा रही हो ?

कपा०—मेरा पूर्व-पालक, कापालिक।

लु०—हाँ वही है। कापालिक ने, समुद्र-तट पर तुमको पाना, वहाँ तुम्हारा पालन-पोषण, नवकुमार का आना, उनके साथ तुम्हारा पलायन, इन सभी बातों को आद्योपान्त बताया। तुम्हारे पलायन के बाद जो-जो बातें हुई थीं, उनका भी वर्णन किया। वे सब बातें तुम नहीं जानतीं। मैं उन्हें विस्तार-पूर्वक कहती हूँ।

यह कहकर लुत्फउन्निसा ने कापालिक का शिखर से गिरना, उस की भुजाओं का टूट जाना, सपना देखना, सब कुछ ही सुना दिया। सपना सुनकर कपालकुण्डला चौंक पड़ी, सिहर उठी—चित्त में बिजली-सी कौंध गई। लुत्फउन्निसा कहने लगी—कापालिक की दृढ़ प्रतिज्ञा भवानी की आज्ञा पालन करने को है। उसकी बाहें बलहीन हैं, इस कारण दूसरे की सहायता उसे नितान्त आवश्यक हो गई है। मुझे ब्राह्मण-बालक समझ, सहायता पाने की आशा से, उसने सारा हाल कह सुनाया। अभी तक मैंने इस दुष्कर्म के लिए अपनी सहमति नहीं दी है।

इस कुकर्मी चित्त की बात मैं नहीं कह सकती, किन्तु मुझे भरोसा है कि मैं कभी स्वीकृति न दूंगी; वरन् इस संकल्प के विरुद्ध कार्य करूंगी, यही मेरा संकल्प है। इसी अभिप्राय से मैंने तुमसे भेंट की है; किन्तु यह कार्य मैंने अपना स्वार्थ बिलकुल ही छोड़कर नहीं किया है। तुमको मैं प्राण-दान दे रही हूँ। तुम भी मेरे लिए कुछ करो।

कपालकुण्डला ने पूछा—मैं क्या करूँ ?

लु०—तुम भी मुझे प्राण दान दो—पति को त्याग दो।

कपालकुण्डला ने बड़ी देर तक कोई भी उत्तर नहीं दिया। बड़ी देर बाद कहा—पति को छोड़कर कहाँ जाऊँ ?

लु०—बहुत दूर विदेश में, तुमको मैं महल दूँगी, धन दूँगी, दास-दासी दूँगी—सदा रानी की तरह रहोगी।

कपालकुण्डला फिर सोचने लगी। संसार में सर्वत्र अपने मानस-नेत्रों को उठाकर उसने देखा—कहीं भी किसी को न देख सकी। अपने हृदय में नजर डालकर देखा—तो वहाँ उसे नवकुमार भी नहीं दिखाई पड़े। तो किसलिए लुत्फउन्निसा के सुख में बाधा दे? लुत्फउन्निसा से उसने कहा—तुमने मेरा उपकार किया भी है या नहीं, यह मैं अभी समझ नहीं पा रही हूँ। महल, धन, सम्पत्ति, दास-दासियों की आवश्यकता मुझे नहीं है। मैं तुम्हारे सुख के रास्ते में बाधक क्यों बनूँ। तुम्हारी इच्छा पूरी हो—कल से तुम इस विघ्न डालनेवाली का समाचार भी न पाओगी। मैं सदा से वनचरी थी, फिर वनचरी बन जाऊँगी।

लुत्फउन्निसा आश्चर्य में पड़ गई, इस तरह शीघ्र स्वीकृति पाने की आशा नहीं थी। गद्गद् होकर उसने कहा—बहन, तुम चिरायुष्मती हो, तुमने मुझे जीवन प्रदान किया। किन्तु मैं तुमको अनाथा बनकर न जाने दूँगी। कल प्रात:काल मैं तुम्हारे पास अपनी एक विश्वासपात्र चतुर दासी को भेज दूँगी। उसके साथ तुम जाना। बर्दवान में एक अति प्रसिद्ध महिला मेरी हितैषिणी सखी हैं—वह तुम्हारी सारी आवश्यकताएँ पूरी कर देंगी।

लुत्फउन्निसा और कपालकुण्डला अपनी बातचीत में इतना मग्न थीं कि सामने का संकट जरा भी उन्हें दिखाई नहीं पड़ा। जो जंगली रास्ता उनके स्थान से निकला था, उसी जंगली रास्ते के किनारे खड़े होकर कापालिक और नवकुमार उन दोनो पर कराल दृष्टि फेंक रहे थे, उसे वे जरा भी न देख सकीं।

नवकुमार और कापालिक उन्हें केवल देख ही रहे थे, किन्तु दुर्भाग्यवश उतनी दूर से उनकी बातचीत जरा भी इन दोनो को नहीं सुनाई पड़ी। मनुष्य के आँख-कान यदि समान दूर जाने में समर्थ

होते तो मनुष्य का दुःखस्रोत घटता या बढ़ता, कौन कह सकता है ? लोग कहा करते हैं कि संसार की रचना अपूर्व कौशलपूर्ण है।

नवकुमार ने देखा, कपालकुण्डला के बाल बिखरे हुए हैं। कपालकुण्डला जब उनकी पत्नी नहीं थी, तब भी वह बाल नहीं बाँधती थी। उन्होंने फिर देखा कि बालों का वह ढेर ब्राह्मणकुमार की पीठ पर बिखरा हुआ है और उनके कन्धे तक लटके हुए केशगुच्छों के साथ मिल गया है। कपालकुण्डला के केश इतने विस्तृत थे और धीमे स्वर में बातचीत करने की गरज़ से दोनो एक दूसरे के इतने समीप बैठी थीं कि लुत्फउन्निसा की पीठ तक कपालकुण्डला के केश फैल गये थे। यह उन लोगों ने नहीं देखा। यह देखकर नवकुमार धीरे से सर पकड़ जमीन पर बैठ गये।

यह देख कापालिक ने अपनी कमर से लटकते हुए एक नारियल के पात्र को बढ़ाते हुए कहा—बेटा ! तुम्हारा बल घटता जा रहा है, यह महौषध पी जाओ, यह भवानी का प्रसाद है। पी लेने से अपूर्व बल मिलेगा।

कापालिक ने नवकुमार के मुंह से बरतन लगा दिया। उन्होंने अन्यमनस्क हो उसे पीकर अपनी घोर प्यास बुझाई। नवकुमार नहीं जानते थे कि यह सुस्वादु पेय कापालिक द्वारा अपने ही हाथ से बनाई गई उग्र तेजस्विनी सुरा है। उसे पीते ही उनमें अपूर्व बल व स्फूर्ति का संचार हो गया।

इधर लुत्फउन्निसा पूर्ववत् मीठे स्वर में कपालकुण्डला से कहने लगी—बहन, तुमने जो काम कर डाला है उसका बदला चुकाने की शक्ति मुझमें नहीं है, फिर भी यदि मैं सदा तुम्हारे मन में स्थान पा सकूं, तो वह भी मेरे लिए अपार सुख है। जो सब गहने मैंने तुमको दे दिये थे, उन्हें तुमने किसी दरिद्र को दे दिये थे, यह बात मैं सुन चुकी हूँ। इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है। कल की दूसरी जरूरत सोचकर अपने केशों में छिपाकर एक अँगूठी मैं ले आई थी, जगदीश्वर

की कृपा से उस पापमय प्रयोजन में मुझे पड़ना नहीं पड़ा। इस अँगूठी को तुम अपने पास रखो। कभी-कभी यह अँगूठी देखकर इस नीच बहन की याद कर लेना। आज यदि पति पूछे कि अँगूठी तुमको कहाँ मिली ! तो कह देना—लुत्फउन्निसा ने दी है। इतना कहकर लुत्फउन्निसा ने अपनी अँगुली से एक बेशक़ीमती अँगूठी निकालकर कपालकुण्डला की उँगली में पहना दी। नवकुमार ने इसे भी देखा। कापालिक उनको पकड़े हुए था, उनको काँपते देख उसने थोड़ी शराब उन्हें फिर पिला दी। मदिरा नवकुमार के मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर उनकी प्रकृति का संहार करने लगी, स्नेह के अंकुर तक को उखाड़ने लगी।

कपालकुण्डला लुत्फउन्निसा से विदा हो अपने घर की तरफ चल पड़ी। इधर नवकुमार और कापालिक लुत्फउन्निसा की निगाह बचाकर अन्य रास्ते से कपालकुण्डला का पीछा करने लगे।

आठवाँ परिच्छेद

घर की ओर

"No spectre greets me—no vain
Shadow this."
—Wordsworth.

कपालकुण्डला धीरे-धीरे घर की तरफ चली। बहुत धीरे-धीरे मृदु चाल से चली। इसका कारण यह था कि वह अति गम्भीर चिन्ता में डूबी चली जा रही थी। लुत्फउन्निसा के समाचार से कपालकुण्डला का मनोभाव बिलकुल ही बदल गया। वह अपने को विसर्जित कर देने को तैयार हो गई। यह आत्म-बलिदान किसके लिए ? लुत्फउन्निसा के लिए ? नहीं, ऐसी बात नहीं।

कपालकुण्डला के अन्तःकरण पर तान्त्रिक की पूरी छाप है। वह तान्त्रिक-पोषिता जो ठहरी। जिस तरह कापालिक काली की कृपा पाने की आकांक्षा से दूसरे के प्राण नष्ट करने में संकोच नहीं करता, कपालकुण्डला भी उसी प्रकार उसी भावुकता में अपना जीवन विसर्जित करने को उद्यत हो गई। कापालिक की ही तरह एकाग्रचित से देवी की कृपाकांक्षिणी हो गई हो, ऐसी बात नहीं है, तो भी दिन-रात देवी की भक्ति-कथा सुनते-सुनाते, उनके दर्शन और उनकी साधना से उसके मन में काली की भक्ति विशिष्ट रूप से घर कर चुकी थी। भैरवी सृष्टि का संचालन करती हैं, मुक्ति प्रदान करती हैं, यह उसका विश्वास हो चला था। काली की पूजाभूमि नर-रक्त से सींची जाती है, यह दृश्य दूसरे के दुःख से कातर, उसके कोमल हृदय से सहा नहीं जाता था, किन्तु किसी अन्य प्रकार से उसकी भक्ति में रंचमात्र भी त्रुटि नहीं थी। अव उन्हीं जगद्धात्री, सबको सुख-दुःख प्रदान करनेवाली, मोक्षदायिनी भैरवी ने उसे अपना जीवन-वलिदान का आदेश दिया है। कपालकुण्डला उस आदेश का पालन क्यों न करेगी ?

सामान्यतः हम लोग मरना नहीं चाहते। क्रोध में आकर भले ही कुछ कह दें। यह संसार सुखमय है। सुख-प्राप्ति की आशा में ही लट्टू की तरह संसार में हम चक्कर काट रहे हैं—दुःख की आशा से नहीं। यदि किसी समय स्वकर्म-दोष से वह आशा फलवती नहीं होती, तभी हम दुःखी होकर क्रन्दन करने लगते हैं। इससे यह सिद्ध है कि दुःख कोई नैसर्गिक नियम नहीं है, नियमों का व्यतिक्रम मात्र है। हमें सर्वत्र सुख ही है। उसी सुख से हम सुख-दुःख के संसार में बँधे और लिप्त हैं। हम उसे छोड़ना नहीं चाहते। परन्तु इस संसार के बंधन की प्रणय प्रधान रस्सी है। किन्तु कपालकुण्डला सुख-दुःख के उस बन्धन में लिप्त न थी। इस लिए कपालकुण्डला की गति को कौन रोक सकता था ? जिसको कोई बन्धन नहीं, उसकी गति में कोई वाधा ठहर नहीं सकती। पर्वत-शिखर से नीचे उतरने पर नदी के तीव्र प्रवाह को कौन रोक

सकता है ? एक बार हवा के बहने पर फिर उसकी गति को रोकने की सामर्थ्य किसमें है ? कपालकुण्डला के चित्त में तूफान पैदा हो जाने पर, उसे कौन शान्त करनेवाला है ? युवा हाथी के मत्त हो उठने पर उसे कौन वश में रख सकता है ?

कपालकुण्डला ने मन ही मन सोचा—यह शरीर जगदीश्वर के चरणों में क्यों न समर्पित कर दूं ? पञ्चभूतों का यह शरीर लेकर क्या होगा । प्रश्न कर रही थी, किन्तु कोई निश्चित उत्तर दे नहीं पाती थी। संसार में और कोई बन्धन न होते हुए भी पञ्चभूतों का एक बन्धन है ।

कपालकुण्डला सिर झुकाये गुमसुम चलने लगी । जब मनुष्य का हृदय किसी उत्कट भावना से व्याप्त हो जाता है, चिन्तन की उस एकाग्रता के कारण बाहरी बातों के प्रति उसका ध्यान जरा भी नहीं रहता । ऐसी स्थिनि में अनहोनी बातें भी प्रत्यक्ष-सी प्रतीत होने लगती हैं। कपालकुण्डला की वही अवस्था इस समय थी ।

मानो आकाशवाणी हुई । उसके कानों में यह शब्द गूंज गया—बेटी ! रास्ता मैं दिखा रही हूँ । कपालकुण्डला ने चौंककर ऊपर निगाह उठाई । देखा, प्रतीत हुआ मानो आकाश में नये बादलों के मध्य में एक दिव्य मूर्ति प्रकट हो रही है, उसके गले में लटकती हुई नरमुण्डमाला से रक्त टपक रहा है; कमर में मनुष्य की भुजाएँ झूल रही हैं—बायें हाथ में नरकपाल है—वक्ष में रक्त का प्रलेप, ललाट में अत्यन्त उज्ज्वल चमकती अग्निशिखा—नेत्रों के बीच बालचन्द्र सुशोभित है । भैरवी मानो दाहिना हाथ उठाकर कपालकुण्डला को अपने पास बुला रही हों ।

कपालकुण्डला ऊपर सिर उठाये चलने लगी । वह नवजलद-सरीखी मूर्ति आकाश-मार्ग से उसके आगे-आगे मानो चली जा रही हो । कभी कपालमालिनी का शरीर बादलों में छिप जाता था, कभी नेत्रों के सामने स्पष्ट प्रकट हो जाता था । कपालकुण्डला उनकी तरफ एकटक ताकती हुई चलने लगी ।

नवकुमार या कापालिक किसी ने यह सब कुछ भी नहीं देखा। नवकुमार का हृदय सुरागरल के प्रभाव से जला जा रहा था। कपालकुण्डला का धीरे-धीरे चलना देख उत्तेजित होकर उन्होंने कहा—कापालिक !

कापालिक ने उत्तर दिया— क्या ?

पानीयं देहि मे। नशे में चूर नवकुमार बोले।

कापालिक ने उनको फिर मदिरा पिला दी।

नवकुमार ने कहा—अब देर क्या है ?

कापालिक ने उत्तर दिया—ठीक है। क्यों विलम्ब कर रहे हो ?

नवकुमार ने भयंकर आवाज से पुकारा—कपालकुण्डला !

कपालकुण्डला सुनकर आश्चर्य में पड़ गई। आजकल कोई उसको कपालकुण्डला कहकर नहीं पुकारता था। वह मुँह घुमाकर खड़ी हो गई। नवकुमार और कापालिक उसके सामने आ गये। कपालकुण्डला पहले उन लोगों को पहचान न सकी। बोली—तुम लोग कौन हो ? यमराज के दूत ?

दूसरे ही क्षण वह बोली—नहीं-नहीं। पिता ! तुम क्या मुझे बलि चढ़ाने आये हो ?

नवकुमार ने दृढ़ मुट्ठी में कपालकुण्डला का हाथ पकड़ लिया। कापालिक ने दयार्द्र मीठे स्वर से कहा—बेटी ! हमारे साथ आओ। यह कहकर कापालिक श्मशान की तरफ रास्ता दिखाते हुए चलने लगा।

कपालकुण्डला ने आकाश की ओर नजर उठाकर देखा—जहाँ गगन-विहारिणी भयंकरी-मूर्ति उसने देखी थी, उसी तरफ उसने फिर ताका। देखा, वह रणरंगिनी मूर्ति ठठाकर हँस रही है; एक लम्बा त्रिशूल हाथ में लिये जिस ओर कापालिक बढ़ रहा था उसी ओर इशारा कर रही है। कपालकुण्डला अदृष्ट से विमूढ़ की तरह बिना कुछ कहे कापालिक का अनुसरण करने लगी। नवकुमार मुट्ठी में कसकर उसका हाथ पकड़े हुए चले।

नवाँ परिच्छेद

श्मशान में

वपुषा करणो जूझितेन सा निपतन्ती
पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकविन्दुना सह दीप्तार्च्चितरुपैति
मेदिनीम् ।।—रघुवंश

चन्द्रमा अस्त हो गया। विश्वमण्डल अन्धकार में ढँक गया। कापालिक ने जिस स्थल को अपनी पूजा के लिए चुना था, कपाल-कुण्डला को वहीं पर ले गया। वह गंगातट का रेतीला किनारा था। उसी के सामने दूर तक रेतीला मैदान था। वहीं पर श्मशान घाट था। दोनो किनारों पर रेती में बाढ़ के समय जल भरा रहता है। भाटा के समय वहाँ पर जल नहीं रहता; इस समय वहाँ जल नहीं था। श्मशान का जो भाग गंगा के सामने था, वह अत्यन्त उँचाई पर था, जल तक पहुँचने के लिए एकदम ऊँचाई से उतरकर जल में जाना पड़ता है। इसके सिवा लगातार हवा के झोंकों से आनेवाली लहरों के थपेड़ों से कगार का निचला भाग खोखला हो गया था; कभी-कभी वहाँ की भूमि की मिट्टी खिसककर अथाह जल में गिर पड़ती थी। पूजा-स्थल में दीपक नहीं था, एक कुंदा जल रहा था। उसके प्रकाश में अस्पष्ट दीखती श्मशान-भूमि और भी भीषण मालूम पड़ रही थी। पास ही पूजा, होम, बलि आदि की पूरी सामग्री रखी थी। विशाल नदी का वक्षस्थल अन्धकार में विस्तार से फैला हुआ था। चैत्र की वायु अवाधवेग से गंगा के ऊपर से सरसर कर बह रही थी। इसी कारण लहरों की टक्कर से उत्पन्न कलकल-ध्वनि आकाश में दूर तक फैल रही थी। श्मशान में गृद्ध, सियार आदि शवभक्षी जन्तु कर्कश स्वर से जब-तब बोल उठते थे।

कापालिक ने नवकुमार और कपालकुण्डला को उपयुक्त स्थान में कुशासन पर बैठाकर तन्त्रादि के विधानानुसार पूजा आरम्भ की। यथासमय नवकुमार को उन्होंने आदेश दिया कि कपालकुण्डला को स्नान करा लाओ। नवकुमार कपालकुण्डला का हाथ पकड़ श्मशान-भूमि से तट पर स्नान कराने के लिए ले चले। उनके पैरों के तलुवों में इधर-उधर बिखरी हड्डियाँ चुभ रही थीं। नवकुमार के पैर की ठोकर से एक जलपूर्ण श्मशान-घट फूट गया। उसके पास ही एक शव पड़ा था—अभागे का अन्तिम संस्कार किसी ने नहीं किया था। दोनो के ही पैर उससे छू गये। कपालकुण्डला उससे बचकर कतरा कर निकल गई, नवकुमार उसे पैरों से रौंदते चले गये। चारो तरफ मुर्दाखोर पशु-पक्षी विचर रहे थे। दो मनुष्यों को आते देख ऊँचे स्वर से चिल्लाने लगे, कोई आक्रमण करने आगे झपटा। कोई पद-शब्द करता हुआ चला गया। कपालकुण्डला ने देखा, नवकुमार का हाथ काँप रहा है, कपालकुण्डला स्वयं निर्भीक, एकदम शान्त थी।

कपालकुण्डला ने पूछा—पतिदेव ! तुम काँप क्यों रहे हो ?

नवकुमार का मदिरा का नशा धीरे-धीरे निर्बल हो रहा था। अति गंभीर स्वर में उन्होंने उत्तर दिया—नहीं मृण्मयी। ऐसी बात नहीं है।

कपालकुण्डला ने पूछा—तो फिर काँप क्यों रहे हो ?

यह प्रश्न कपालकुण्डला ने जिस निर्भीक कंठ से किया वह केवल उस स्त्री-कंठ से ही सम्भव है, जो किसी के दुःख में गल जाती है। कौन सोच सकता था कि मृत्यु को सामने खड़ी देख श्मशान में कपालकुण्डला ऐसा प्रश्न कर बैठेगी ?

नवकुमार बोले—भय कुछ नहीं है। बस रो नहीं सकता, इसी क्षोभ में काँप रहा हूँ।

कपालकुण्डला ने पूछा—रोओगे क्यों ?

फिर वही स्थिर कंठस्वर !

नवकुमार बोले—रोऊँगा क्यों ? तुम क्या जानो, मृण्मयी ! तुम तो कभी रूप देखकर विक्षिप्त नहीं हुई--कहते-कहते नवकुमार का कंठस्वर यन्त्रणा मे रुँध गया। तुम तो कभी अपना हृतपिण्ड आप ही काटकर श्मशान में फेंकने के लिए आई नहीं। इतना कहकर सहसा नवकुमार चीख पड़े और चिल्लाकर रोते-रोते कपालकुण्डला के पैरों पर पछाड़ खाकर गिर पड़े।

मृण्मयी ! कपालकुण्डले ! मुझे बचाओ। मैं तुम्हारे पैरों पर गिर रहा हूँ--एक बार कहो कि तुम अविश्वासिनी नहीं हो--एक बार कहो, मैं तुमको हृदय में उठाकर घर ले जाऊँ।

कपालकुण्डला ने हाथ पकड़कर नवकुमार को उठाया—मीठे स्वर से बोली—तुमने तो कभी पूछा नहीं था।

जब यह बातचीत हुई, तब दोनो एकदम जल के किनारे आ पहुंचे थे; कपालकुण्डला आगे, नदी की तरफ पीठ किये खड़ी थी, उसके एक ही कदम पीछे अथाह जल भरा था। अब जल में ज्वार चढ़ना आरम्भ हो गया था। कपालकुण्डला एक कगारे पर खड़ी थी। उसने फिर कहा—तुमने तो कभी पूछा नहीं था।

नवकुमार मे पागलों की तरह कहा--मैं चेतना खो चुका हूँ, क्या पूछूं, बताओ--मृण्मयी ! बताओ—बताओ—बताओ—मेरी रक्षा करो। घर वापस चलो।

कपालकुण्डला ने कहा—तुमने जो पूछा है, वह बताऊंगी। आज तुमने जिसको देखा है, वह है पद्मावती। मैं अविश्वासिनी नहीं हूँ। मेरा यह कथन सत्य है। किन्तु अब मैं घर न जाऊँगी। भवानी के चरणों पर शरीर विसर्जित करने आई हूं—अवश्य ही यह काम मैं करूंगी। मेरे देवता ! तुम घर जाओ। मैं आज मरूंगी। मेरे लिए तुम मत रोओ।

नहीं—मृण्मयी !—नहीं !—बड़े जोर से चिल्लाकर नवकुमार ने कपालकुण्डला को हृदय से लगाने के लिए दोनो बाहों को फैलाया

किन्तु कपालकुण्डला को फिर वे न पा सके। चैत मास की तीव्र वायु से प्रेरित एक तेज थपेड़ा आकर, जहाँ किनारे कपालकुण्डला खड़ी थी, वहीं तट के निचले भाग में टकराया। उसी क्षण कगारे का भूखण्ड कपालकुण्डला के साथ घोर शब्द के सहित नदी के प्रवाह में टूटकर गिर पड़ा।

नवकुमार ने कगारे के टूटकर गिरने की आवाज सुनी। उन्होंने देखा कि कपालकुण्डला लापता हो गई। तुरन्त ही उसके पीछे छलांग मारकर वे भी जल में कूद पड़े। नवकुमार तैरने में एकदम असमर्थ नहीं थे। कुछ देर तक तैरते हुए कपालकुण्डला को ढूंढ़ते रहे। उसको न पा सके, वे भी फिर ऊपर नहीं उठे।

गंगा के उस अनन्त प्रवाह में वासन्ती समीर विलोड़ित तरंग-माला में डूबते-उतराते कपालकुण्डला और नवकुमार न जाने कहाँ चले गये ?*

❀ समाप्त ❀

श्री चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु द्वारा
समाज-सेवा प्रेस, सआदतगंज रोड, लखनऊ में मुद्रित

---

* आगे का हाल जानने के लिए श्री दामोदर मुखोपाध्याय लिखित "कपालकुण्डला" के परिशिष्ट का हिन्दी-अनुवाद प्रभाकर साहित्यालोक द्वारा प्रकाशित "मृण्मयी" में पढ़िए। —प्रकाशक